विवाह-समस्या

अर्थात्

स्त्री-जीवन

लेखक

महात्मा गांधी

प्रकाशक

सरस्वती-सदन

दारागंज-प्रयाग

द्वितीय बार १५०० | फरवरी १९३४ | अजिल्द ।॥) सजिल्द १)

प्रकाशक
हर्षवर्द्धन शुक्ल
व्यवस्थापक, सरस्वती-सदन
दारागंज, प्रयाग

मुद्रक
प० श्रीराम शर्मा
वनिता हितैषी, प्रेस
कर्नलगंज, प्रयाग

उपहार

श्री ....

....

के

कर कमलों में

सम्पित

....

दो शब्द

आजकल की विविध रूढ़ियो, और दकियानूसी विचारों के कारण हिन्दू समाज का नारी-जीवन अत्यन्त संकट मय और शिकञ्जे मे कसा हुआ है उनके अनेक पहलुओं पर विचार करने से मालूम होता है कि प्रकृति-ससार मे स्त्री का कोई महत्त्व नहीं, वे केवल पुरुष-समाज के सुख और विषय-वासना की पूर्ति-मात्र का कारण है।

हमारे वैदिक ग्रन्थों, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रो में स्त्री जाति की महत्ता के जो प्रमाण मिलते हैं और नारी चरित्रों के जो उदाहरण इतिहासो मे पाये जाते हैं उनसे तो हिन्दू समाज का नारी-जीवन संसार के स्त्री समाज के लिए एक आदर्श पथ-प्रदर्शक हो जाता है किन्तु वर्त्तमान कट्टरपंथियो के विचारो और

ग्रन्थो के उल्लेखों में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है इसी से एक हिन्दू नारी का जीवन दुखमय बन रहा है, और हिन्दू नारी के प्रति यह तिरस्कार और व्यवहार भारत की अधोगति का एक प्रधान सहायक कारण है।

हिन्दूनारी का जीवन उसके विवाह के समय से प्रारम्भ होता है। इस पुस्तक मे विश्व-वन्द्य महात्मा गांधी ने विवाह समस्या पर भिन्न भिन्न पहलुओं से गभीर विचार करके अपने लेखो को हिन्दू-समाज का पथ प्रदर्शक बना दिया है और पुरुषों को जागृत और सचेत करके स्त्रियों को उनके वास्तविक स्थान पर बैठा दिया है।

प्रत्येक हिन्दू स्त्री और पुरुष लेखों को मनन पूर्वक पढ कर अपने दाम्पत्य जीवन को स्वर्गिक बना सकता है और पारस्परिक कर्त्तव्यों को समझते हुए वैवाहिक उलझनों को सरलता पूर्वक सुलझा सकता है।

महात्मा जी का एक एक शब्द संसार के लिए दिव्य अमर सदेश है, अन्तरात्मा की ज्योति है और जीवन के लिए प्रकाश-द्वार है। फिर इन लेखों के लिये क्या कहना जो दाम्पत्य जीवन के सुख की कुंजी ही हैं।

आशा है हिन्दू समाज का प्रत्येक स्त्री पुरुष इस पुस्तक को अपने जीवन का सच्चा सहायक बनावेगा।

—प्रकाशक

—:o:—

विषय-सूची

—:o:—

विवाह और विवाह-विधि

इस विषय पर एक परम मित्र के साथ मेरा पत्र व्यवहार हुआ था; उनका एक पत्र बहुत समय से मेरे पास पड़ा था; आज उसी पत्र का महत्व-पूर्ण अँश नीचे दे रहा हूँ—

" विवाह के मंत्रों के सम्बन्ध में आपका पत्र मिला। विवाह की कल्पना के बारे मे तो मत भेद नहीं है किन्तु सवाल सिर्फ दो हैं। शास्त्र-वचनो अर्थात् मन्त्रो का अर्थ क्या किया जाय ? और व्याहे जाने वाले स्त्री-पुरुषो के समक्ष प्रतिज्ञा के रूप में कौन सा आदर्श रक्खा जाय ? मेरी कल्पनानुसार विवाह के उद्देश्यो का क्रम नीचे लिखा है—

१. परस्पर प्राकृतिक-आकर्षण २ विषयेच्छा ३. सहजीवन और तत्परिणामी परस्परावलम्बन ४. धर्माचरण मे सहयोग ५. सन्तानोत्पत्ति ; ६. आत्मोन्नति या मोक्ष-साधन मे एक दूसरे की सहायता करना; और ७. हृदय की अभिन्नता।

एक दूसरे के प्रति अनन्य निष्ठा ही विवाह का मुख्य स्वरूप है, और विवाह का खास सम्बन्ध विषय और विषय के फल स्वरूप होने वाली सन्तानोत्पत्ति से है। इस उद्देश्य के

अभाव मे ब्रह्मचर्य से रहना ही स्वाभाविक है। विषयेच्छा विवाह का मूल प्रेरक कारण भले ही हो, विवाह की सार्थकता तो धर्मानुमोदित सन्तानोत्पत्ति में ही है। जिस दिन सन्तति की इच्छा नहीं रहती, उस दिन विवाह भी नहीं रहता। उस दशा मे विवाह या तो पतन की दशा मे चल कर व्यभिचार का रूप धारण करता है, या ऊँचे उठ कर असाधारण आत्मिक सम्बन्ध मे बदल जाता है। जिन लोगों की दृष्टि मे आरम्भ से ही इस तरह का आत्मिक सम्बन्ध एक मात्र प्रेरक कारण रहा हो, वे विवाह ही न करे, उन्हें व्याह करने का कोई कारण नहीं, कोई हक भी नहीं, जब तक सन्तानोत्पत्ति की इच्छा बनी है, तब तक दोनो का सम्बन्ध धर्म्म है, उदात्त है, मगर शुद्ध आध्यात्मिक नहीं। संतति की वासना के न रहने पर विवाह सम्बन्ध भी नहीं रहता; तथापि सहजीवन बुरा नहीं, अर्थात् उस दशा में दोनो के बीच सख्य-भाव का पवित्र आध्यात्मिक सम्बन्ध दृढ़ होता है। इस सम्बन्ध मे स्वार्थ, मोह अथवा जड़ता न होने से इसमें अन्य-निष्ठा का महत्त्व नहीं रह जाता। अतिचार का इसमे स्थान नहीं होता, क्योंकि आध्यात्मिक सम्बन्ध मे अतिरेक जैसी कोई चीज ही नहीं होती।

अगर यह विचार-धारा ठीक हो तो, सन्तानोत्पत्ति-रूप विवाह जो मुख्य और एक मात्र निर्णायक हेतु है उसे प्रतिज्ञा मे स्थान मिलना चाहिए। हमारे पुर्वजों के इस कथन से कि सन्तति के अभाव में गृहस्थ-आश्रम अभद्र है, अस्वर्ग्य है, हम

भले ही उदासीन रहें, लेकिन विवाह के मुख्य उद्देश्य को अमान्य कदापि न रखे।

सप्त पदी की हर एक प्रतिज्ञा स्वाभाविक, सादी और हर किसी मनुष्य की समझ मे आने योग्य है। हर एक शब्द का आध्यात्मिक अर्थ करने और व्यावहारिक अर्थ को भुला देने से, न तो हम सत्य का पालन करते है और न समाज को ही ऊँचा उठाते है। संकुचित अर्थ को व्यापक अवश्य बनाना चाहिए—इसमे सत्य है, औचित्य है। सप्त-पदी का अर्थ कितना सीधा-सादा और सरल है। दोनों मिलकर अन्नादि प्राप्त करें और उनका सेवन करें; दोनो के सहयोग से हर तरह के सामर्थ्य मे वृद्धि हो; घर मे धन-धान्य इत्यादि बढ़ें, ऐहिक और धार्मिक सम्पत्ति बढ़े; दोनो, पति-पत्नी और कुटुम्ब के और सब लोग सुख एवँ सतोष पूर्वक रहे; बाल-बच्चे हो; बाद मे जीवन मे परिवर्त्तन होने लगे; आखिरकार परम-आप्त परम मित्र का शुद्ध, स्वच्छ, आध्यात्मिक सम्बन्ध सुदृढ़ बना रहे।

कन्या किसे देना चाहिये और किसे न देना, इस विषय पर विचार करते हुए शास्त्रकारो ने दश दोषो पर ध्यान रखने की सलाह दी है। जो युवक विवाह-मुख हैं, जो मुमुक्षु हैं और जो साहसिक एवं शूर हैं, उन्हे कन्या न दी जाय। जब उद्देश्य ही सन्तानोत्पत्ति का न हो तो कन्या विवाह क्यों करे? कैसे करे? पुत्रेष्णा के निकल जाने पर विवाह का स्वरूप बदल जाता है; अतः इतना स्पष्ट करना आवश्यक है कि विवाह से

'प्रजाभ्यः' वाली प्रतिज्ञा भंग नहीं होती। और इसका समावेश 'ऋतुभ्यः' वाली प्रतिज्ञा मे हो जाता है।

' धर्मे च अर्थे च कामे च नाति चरामि ' प्रतिज्ञा में मुमुक्षु के लिए मर्यादा है। यह जरूरी नहीं कि विवाह-सम्बन्ध मरते दमतक क़ायम रहे, मगर ' आ-मुमुक्षा-मुमुक्षु' बनने की इच्छा के उदय होने तक—तो उसे बना ही रहना चाहिए। मुमुक्षा के तीव्र, शुद्ध और स्थिर बन जाने पर विवाह की दृष्टि से विवाह सम्बन्ध नहीं रह जाता। यानी, सप्त-पदी की प्रतिज्ञा में प्रजोत्पादन का उल्लेख न होता तो भी मैं आपकी विवाह-सम्बन्धी कल्पना से सम्पूर्ण सहमत होते हुए इस बात का आग्रह करता कि उसमे इस आशय की (सन्तानोत्पति) की प्रतिज्ञा बढ़ा दी जानी चाहिए। पुत्रेषणा के कारण ही दाम्पत्य-सम्बन्ध धर्म की दृष्टि से (मोक्ष की दृष्टि से नहीं) पवित्र बनता है, इसके कारण अन्योन्य निष्ठा उत्पन्न हो सकती है। इसी के द्वारा सयम-धर्म का ज्ञान मिलता है और यह कह कर चुप नहीं बैठा जा सकता कि विवाह के गर्भ मे ही यह बात छिपी हुई है।

जिस तरह प्रतिज्ञा के उच्च से उच्चअर्थ को शक्यता पर विचार करते हैं उसी तरह उसका बुरा से बुरा अर्थ क्या हो सकता है, इस बात पर समाज के कर्णधारों को 'विचार करना चाहिए। हम ' मयोभव्याय ' का अर्थ 'आनन्द के लिए, करते है। इस अर्थ से विषय-भोग की ध्वनि निकलती है, उसे स्थान मिलता है, किन्तु सन्तानोत्पत्ति की सभावना ध्वनित तक नहीं

होती। ऐसी दशा में इस अर्थ का अनर्थ होते देर नहीं लगती।

अब शास्त्र के अर्थ की बात और बच रही है। आप इस बात पर विचार करने को तैयार नहीं कि किस समय वचन में से कौन अर्थ निकल सकता है और कौन नहीं। पुराने शास्त्रकार एकाक्षरी कोष की सहायता से किसी भी श्लोक के आठ-आठ, दस-दस अर्थ निकाल लेते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी धात्वर्थ के बल पर वेदों का बहुत सुन्दर अर्थ किया है। मगर वह सच है या नहीं, यह एक दूसरा सवाल है। मन्त्रों में से अधिकाधिक आत्मोन्नति कर अर्थ निकाला जा सकता है तो अवश्य निकाला जाय, मगर इनके लिए प्रामाणिकता की हत्या न की जानी चाहिये। वैसे, मन्त्रों के अर्थ के सर्वमान्य नियम बने हुए हैं ही। किसी वचन का अर्थ, पूर्वापर सम्बन्ध, सदर्भ, प्रयोजन, आस-पास के इतिहास, तथा परपरागत अर्थ को विशेष महत्व न दें तो भी हर्ज नही, क्योकि भूल दीर्घ-काल तक एक सी होती आ सकती है। किन्तु अगर प्रसग, हेतु आस-पास के दूसरे मत्र इत्यादि बातें साफ-साफ किसी एक अर्थ को पुष्ट करती हों, परम्परा मे भी एक वाक्यता हो, इतिहास से भी उसे पुष्टि मिलती हो, तो मनस्विता के कारण पुराने मंत्रो का नया अर्थ करने की अपेक्षा प्रामाणिकता-पूर्वक उसमे रद्दो-बदल करना ही सच्चा मार्ग है। 'प्रजाभ्यः' के बदले 'सर्व भूत् हिताथाय' के रूप मे सीधा-साधा परिवर्तन कर देना

बुद्धि गम्य है। अगर किसी एकाध शब्द का कोई दूसरा अर्थ भी किया जा सकता हो तो उसके कारण सारे मंत्र का अर्थ नहीं बदला जा सकता।

अगर किसी मत्र के समानतया दो अर्थ होते हों तो धर्म की दृष्टि से नीति-पोषक अर्थ ही मान्य होना चाहिए। लेकिन मंत्र का सादा और निःसंशय अर्थ हमारी रुचि के बिलकुल विरुद्ध हो अथवा अनीति-पोषक हो तो हम उसे अमान्य कर दें। खींच-तान करके दूसरा अर्थ निकालने की कोशिश कदापि न करनी चाहिए। इससे जनता की आदत मे बुराई पैदा होती और शास्त्रार्थ के क्षेत्र मे अराजकता उत्पन्न हो जाती है। 'कानूनी-कल्पना' (लीगल फिक्शन) की भी अपनी मर्यादा होनी चाहिए।

मेरी कल्पनानुसार तो विवाह की प्रतिज्ञा मे सन्तानोत्पत्ति का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। अगर यह इष्ट न हो तो पुरानी शब्द 'प्रजाभ्यः' को हटा कर (व्याकरण द्वारा इसका दूसरा अर्थ हो सकता हो तो भी) जान बूझ कर कोई असदिग्ध शब्द उसके बदले रख देना चाहिए।

प्राचीन वचन है कि सात कदम साथ चलने से मित्रता दृढ़ होती है। यह समझना कि सड़क पर सात कदम चलने से यह बन पड़ता है, भूल है। सहजीवन से सात सीढियां एक साथ चिताने पर शुद्ध निष्काम मित्रता दृढ़ होती है। प्रतिज्ञा मे इसी तरह के विकास-क्रम की बात कही गई है। हमे चाहिये कि

"सभी धान बाइस पसेरी" के अनुसार इसकी उपेक्षा कर हम अर्थ का अनर्थ न करें।

हमारी विवाह-विधि में ऐसी कोई बात होनी चाहिए, जिस से लोग यह समझ सकें कि विवाह को किन्हीं दो पंक्तियों का साधारण सम्बन्ध-मात्र समझना भूल है। विवाह-विधान पर गभीर विचार करने से मुझे यह प्रतीति हुई है कि अगर पति-पत्नी ईश्वर को, अर्थात् परम-तत्व को समान रूप से मानने वाले न हों तो वह विवाह कल्याण-कारी नहीं होता, यही नहीं बल्कि उसका स्थायी होना भी अशक्य है। अतएव विवाह के बाद शीघ्र ही पति-पत्नी को समान रूप से, एक सी विधि-द्वारा, ईश्वर की उपासना, पूजा और प्रार्थना करनी चाहिए। अगर विवाह की प्रतिज्ञाओं में चतुर्विध-पुरुषार्थ का अर्थात् जीवन के आदर्श की एक-रूपता का संकल्प भी जोड़ दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो।

जिस तरह गंगा-यमुना के संगम में सरस्वती की गुप्त धारा भी मिली हुई है, उसी तरह विवाह में ईश्वर को गूंथ कर त्रिवेणी बना देने के बाद विवाह और समाज का सम्बन्ध स्पष्ट होजाना चाहिए। विवाह-विधि की स्थापना में इस भाव को स्थान होना चाहिए कि विवाह एक समाजिक सम्बन्ध है, अथवा विवाह-विधान में ही समाज की बुनियाद सन्निहित है। विवाह-विधि द्वारा वर-कन्या के मस्तिष्क में ये संस्कार दृढ़ हो जाने चाहिए कि वृक्ष-सेवा, जलाशय-शुद्धि, गोरक्षा

सूत्र-कर्त्तन (सूत कातना) और विद्याध्ययन ये पांच महा-यज्ञ करके ही आदमी विवाह कर सकता है। और विवाह के बाद भी इन पांच महायज्ञों को करते रहना गृहस्थाश्रमी का मुख्य धर्म है।

दान गृहस्थाश्रम का एक अपरिहार्य अंग है, अतः विवाह-विधि मे इसे भी थोड़ा-बहुत स्थान हो तो अच्छा ही है।"

यह पत्र नहीं लेख है, और मननीय है। पत्र में वर्णित अधिकांश सिद्धान्तों से मैं सहमत हूं। लेकिन दो बातो में शायद मत-भेद होगा। 'होगा' इसलिए कहता हूँ कि बहुधा वस्तु तो एक ही दीख पड़ती है, लेकिन दृष्टि-कोण जुदा-जुदा होने से वस्तु भी जुदा-सी भासमान है। मेरे विचार मे यह जरूरी नहीं कि विवाह में सन्तानोत्पत्ति की भावना होनी ही चाहिए। आज भी मेरी आंखों के आगे ऐसे उदाहरण मौजूद हैं, जिनमे स्त्री-पुरुषो सन्तानोत्पति या विषय-भोग की तनिक भी इच्छा न रहते हुए दाम्पत्य-जीवन स्वीकार किया है। आलिव श्राइनर का सम्बन्ध इसी कोटि का था ; आस्ट्रिया मे एक दम्पति हैं, जिनका सम्बन्ध आज भी इसी श्रेणी का है प्रारम्भ से भी ऐसा ही था। एक दूसरा जोड़ा था, प्रारम्भ मे जिसे सन्तानोत्पत्ति की बिलकुल भी इच्छा न थी, किन्तु बाद में सम्बन्ध होजाने पर सन्तान पैदा अवश्य हुई थी। उन्होंने इस परिणाम को अच्छा नहीं माना और बाद मे उसका सदुपयोग कर लिया। वे सावधान हुए और भविष्य मे संयम-पूर्ण जीवन बिताने का

सकल्प कर अपने लिए दो बालको की मर्यादा बाँध ली। मैं कुछ ऐसी भारतीय बहनों को जानता हूं, जिन्होंने संसार की निन्दा से बचने और अपनी अबलावस्था के कारण पुरुष का संरक्षण पाने की गरज़ से ही विवाह किया है। ऐसे विधुर तो अनेक पड़े हैं, जो अपनी घर-गृहस्थी चलाने और पहले विवाह के बालकों का पालन-पोषण करने के लिए किसी जीवन सहचरी को खोज लेते है। संयमी-जीवन बिताने वाले जगत् का प्रवाह इन दिनों विवाह को सन्तानोत्पत्ति से पृथक मानने की ओर बह रहा है। शीघ्र ही यह मान लेने का मै कोई कारण नहीं देखता कि स्त्री-पुरुष-जैसे भिन्न लिग वाले जोड़ो की सगति के मूल मे सन्तानोत्पत्ति की भावना होती ही है। दम्पति प्रेम की निर्मलता मे प्राणी-मात्र की एकता की साधना क्यों न हो? आज जो बात असम्भव प्रतीत होती है, कल वही क्यो न सम्भव हो जाय? सयम की मर्यादा ही क्या हो सकती है? हमें चाहिये कि हम मनुष्येतर प्राणी का उदाहरण समाने रख कर मनुष्य की उन्नति की सीमा न आंकें; ईश्वर-प्राणियों का दृष्टान्त हमारे लिए वहीं तक उपयोगी है, जबतक उससे हमारा पतन नहीं होता।

अगर स्त्री-पुरुष का विषय-सम्बन्ध पांच साल बाद बन्द करना है तो मूल से ही उसे बन्द करना इष्ट क्यो न हो? इससे अगर विवाह की सख्या घटे तो भले न घटे, अथवा इस तरह के विवाह कम न हों तो भले न हो। मेरी कल्पना की

सच्चाई के लिए तो एक ही शुद्ध उदाहरण काफी है। 'जया-जयन्त' आज भले ही नानालाल 'कवि की कल्पना' में रम रहे हों किन्तु कल वे ही मूर्ति-मन्त न होंगे, इसका क्या प्रमाण ?

लेकिन मेरे मन मे जो मुख्य कल्पना बिहार कर रही है, वह तो जुदा ही है, सप्तपदी की प्रतिज्ञा मे सन्तानोत्पत्ति की भावना को स्थान न मिलना चाहिए। जिस बात का विरोध न करने पर वह होकर ही रहती है, उसको प्रतिज्ञा ही क्यों की जाय ? सन्तानोत्पत्ति को कर्त्तव्य न मनाने पर भी वह तो होती रहेगी। अतएव अगर इस सम्बन्ध की प्रतिज्ञा हो तो यों होनी चाहिये 'हम रति सुख के लिए नहीं भोगेगे, बल्कि सन्तान को भरण-पोषण के लिए अपनी योग्यता में विश्वास होने पर ही सन्तानोत्पत्ति के लिए उस सुख का उप-भोग करेंगे।' पाठक समझ सकेंगे कि इसमे और सन्तानोत्ति की प्रतिज्ञा करने मे आकाश-पाताल का अन्तर है। संतानोत्पत्ति की प्रतिज्ञा के कारण आज हिन्दू-संसार मे पुत्र की इच्छा को लेकर जो अनिष्ट रात दिन हो रहे हैं, उन्हें कौन नहीं जानता ?

किसी जनता के लिए ऐसे समय की सहज ही कल्पना की जा सकती है, जब सन्तानोत्पत्ति विवाह का मुख्य उद्देश्य मान लेना आवश्यक हो पड़े। आज फ्रांस मे यही युग वर्त्तमान् है। फ्रांस की जनता ने बे-लगाम होकर विषय-सुख भोगने के लिए सन्तानोत्पत्ति पर कृत्रिम अकुश रखे थे उसका परिणाम यह हुआ कि अब वहां जन्म के मुकाबले मृत्यु बढ़ गई है। अतएव

अब लोगों को सन्तानोत्पत्ति का धर्म सिखाया जाता है। जहां लड़ाई के कारण पुरुष आपस मे कट मरे हैं, वहां भी सन्तानोत्पत्ति का धर्म वरत रहा है, यही नहीं बल्कि एक पुरुष का अनेक स्त्रियों के साथ व्याह कर लेना भी धर्म माना जाता है। पहले उदाहरण मे विषय-भोग की अतिशयता है, दूसरे मे मनुष्य-हिंसा पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। जो परिणाम इसका निकला वह अनिवार्य ही था। अतएव उन-उन युगो में अधर्म होते हुए भी ये बातें धर्म के नाम से विख्यात हुई। वास्तविक धर्म तो यह था 'तुमने खूब विषय भोग किया, अब नष्ट होओ; तुम पशु से भी बदतर साबित हुए, आपस में कट मरे, अब जो बचे हो, सो भी मर मिटो।' इस द्विविध नाश मे जगत का हित है, क्योंकि इसमें कर्म का सीधा फल भोगने को मिलता है। भगवद्-गीता भी यही कहती है। महाभारत-कार ने भी शेष मुट्ठी भर लोगों का नाश ही चित्रित किया है।

आज जब कि हम विवाह के अनेक दूसरे शुभ उपयोगो का अनुभव कर रहे हैं, हम उन्हें ही अपना लक्ष्य क्यो न बना लें और सन्तानोत्पत्ति को उसके स्वभाव पर क्यों न छोड़ दे? मुझे यही इष्ट और आवश्यक मालूम होता है। हम संकल्प सेवा का करें, भोग विवश होकर भोगें।

अब मैं विधि के अर्थ पर आता हूँ। मुझे यह क़बूल करते हुये ज़रा भी संकोच नहीं होता कि सत्य पर प्रहार करके किया गया अर्थ त्याज्य है। लेकिन जहां परस्पर सम्बन्ध का

विचार करते हुये इष्ट किन्तु नया ही अर्थ उत्पन्न हो सकता हो वहां वही अर्थ करने का हमे अधिकार है। यही हमारा धर्म भी है। पहले जिन अर्थों की कल्पना भी न की गई हो, वैसे शुभ-अशुभ अर्थ लोग सदा करते ही रहेंगे। लोकोन्नति के साथ-साथ उसके वाहनों साधनों की भी उन्नति होगी ही। उसके परस्पर सम्बन्ध का एक बड़ा साधन भाषा है, जिसका सदा विकास होता ही रहेगा। एक नये शब्दों और नये वाक्यो की रचना द्वारा और दूसरे उन्ही वाक्यों और उन्हीं शब्दो के नये अर्थो द्वारा किस समय कौन सा अर्थ उचित है और किस परिस्थिति मे किसे ग्रहण करना चाहिये इसका निर्णय लोगो की विवेक-बुद्धि पर निर्भर रहेगा, इसमे कोई सिद्धान्त आड़े नही आता। विवेक-पूर्वक किये गये अर्थ शोभास्पद होगे। उनकी एक ही मर्यादा हो सकती है। उनमे कहीं लवलेश भी सत्य का लोप नहीं।

मैने इन पक्तियों मे इस बात पर विचार नहीं किया है कि सप्त-पदी के मंत्रो मे कहां और क्या सुधार करना उचित है। क्योंकि उक्त दो मूल विवादास्पद बातों को मन मे स्पष्ट कर लेने पर संस्कार के रूप का निश्चय करना तो एक सहज-सी बात हो पड़ती है।

(नव जीवन)

नव दम्पति के प्रति

[श्री जमुना लाल बजाज की पुत्री, बहन कमलाबाई का विवाह संस्कार सत्याग्रह आश्रम मे किया गया था। रूढ़ियो और परम्पराओ मे अधिक से अधिक जकड़ी हुई मारवाड़ी क़ौम के अग्रगण्य नेता श्री जमुनालाल जी ने परम्परा का त्याग करके बड़ी सादगी के साथ, किसी भी प्रकार के आडम्बर के बिना, भोजनादिक के बड़े भारी ख़र्च के बिना, यह संस्कार होने दिया, इसलिये श्री जमुना लाल जी और उनके समधी श्री केशवदेव जी धन्यवाद के पात्र हैं। इस अवसर पर श्री गान्धी जो ने वर-वधू को जो आशीर्वाद दिया उसमे विवाह का महत्व स्पष्ट समझाया गया है और इस आदर्श विवाह के सम्बन्ध मे उनके उद्गार प्रत्येक हिन्दू के लिये विचारणीय हैं।]

आप लोग भाई और बहनो, दोनो जो बाहर से परिश्रम उठाकर रामेश्वर प्रसाद और कमला इन दोनो को आशीर्वाद देने को आये हो, इससे मुझे आनन्द होता है और मै आपको धन्यवाद भी देता हूं। धन्यवाद देने का सबब यह है कि इसको आप सामान्य विवाह नहीं समझते। हिन्दू-जाति मे जो विवाह

होता है उसमे बहुत आडम्बर होता है। रङ्ग-राग, नाच-तमाशा, खाना-पीना अनेक प्रकार का प्रलोभन होता है। विवाह का धार्मिक अंश जिसके कारण विवाह करना योग्य समझा गया है वह छिप जाता है, हम धार्मिक अंश को भूल जाते है।

विवाह मे पैसे का व्यय इनना अधिक होता है, कि ग़रीबो को विवाह करना आपत्ति सी हो जाती है। कई लोग कर्जदार होजाते है, और उस कर्ज़ से जन्म भर मे भी उनके लिये छूट जाना मुश्किल हो जाता है। ऐसे विवाह से, वर और कन्या दोनो गृहस्थाश्रम-धर्म का विधिवत् पालन करें, यह आकाश-पुष्पवत् हो जाता है। जिस विवाह मे इतना आडम्बर होता है और जो विवाह-विधि इतनी विकारमय होती है, और जिसे विकारमय बनाने के लिये माता-पिता इतना परिश्रम उठाते हैं उससे वर और कन्या संयममय जीवन व्यतीत करें यह मुश्किल बात हो जाती है। यद्यपि इस आश्रम का आदर्श यह है कि विवाहित होते हुये भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और उसी प्रकार कुछ लोग रहते भी है; बालक और बालिकाओं को ब्रह्मचर्य की शिक्षा और पदार्थ-पाठ दिये भी जाते हैं। ऐसा होते हुए भी आश्रम के नजदीक और उसकी छाया मे विवाह किया जाता है, इसका कारण क्या ? इसको धर्म-संकट माना जाय।

अहिंसा का पालन करने वाले किसी पर बलात्कार नहीं करते। आश्रमवासियों मे से जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं

कर सकते उनके लिये विवाह करना कर्तव्य ही है। और इस कर्तव्य के करने में हम उनको आशीर्वाद क्यों न दें? और विधि भी अच्छी क्यों न चलावे ? यह भी कर्तव्य है, और उसके पालन करते हुये तथा सोचते हुये मैंने यह देखा है कि हिन्दुस्तान में अथवा सारे संसार में जहा विवाह मे धार्मिक-विधि मानी जाती है, वहां उसमे संयम का अंश होता है। विवाह स्वेच्छाचार के लिये नहीं है। स्मृतियों में भी लिखा है कि जो दम्पति नियम से रहते हैं वे भी ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। मैंने भी इसको बहुत समय तक नहीं समझा था। पर बहुत विचार करने के बाद मै समझ सका। जो अपने विकारों का नाश नहीं कर सकते वे मर्यादा मे रह कर विकारों पर अंकुश रखते हुए अनिवार्य रूप से इतना व्यवहार कर सकते हैं। वे भी संयमी कहलाते हैं।

जमना लाल जी का और मेरा जो सम्बन्ध है वह तो आप खूब जानते ही हैं। हम दोनों में यह निश्चय हुआ कि जितनी सादगी से और कम खर्च से विवाह कर सकें करना चाहिये, जिनसे दोनों (वर-वधुओं) पर अच्छा प्रभाव पड़े। इस तरह से विवाह की क्रिया करनी चाहिये कि वे विवाह का सच्चा अर्थ समझ सकें। विवाह को आडम्बर-रहित बनाना, भोजनादि और गान-तान को स्थान नहीं देना, ऐसा अच्छी तरह से कहां हो सकता है? अगर बम्बई में किया जाय तो मारवाड़ी समाज को और जमना लाल जी के मित्रों को इससे शिक्षा मिलेगी। आज कल सुधारों के नाम से जो

अधर्म चल रहा है, वह नष्ट हो जावेगा। जो धर्म समझना चाहें उनके लिये दृष्टान्त हो जावेगा। परन्तु मुझे यह भ्रम था कि जितनी सादगी के साथ यहां विवाह हो सकता है उतनी सादगी के साथ वहां नहीं हो सकता। इसकी दलीलों में मैं उतरना नहीं चाहता। इसी कारण से मैंने वर्धा को भी छोड़ दिया और बम्बई को भी छोड़ दिया। परन्तु इस कार्य को कैसे किया जाय ? जमना लाल जी और उनके माता-पिता की सम्मति से ही काम नहीं चल सकता था। रामेश्वर प्रसाद के वडीलवर्ग की भी सम्मति की जरूरत थी। प्रभु का अनुग्रह था कि केशव जी ने भी इसे स्वीकार कर लिया। मारवाड़ी समाज मे धन बहुत है और खर्च भी अधिक होता है। इतना अधिक कि गरीबों को विवाह करना अशक्य सा हो जाता है, और उन पर बोझ पड़ता है। विवाहों में फुलवाड़ी, भोजन, रंडियों और नायिकाओं का नाच होता है। मैं नहीं जानता कि मारवाड़ी लोगों मे नाच होता है या नहीं, परन्तु गुजरात के धनिक लोगों में तो कहीं-कहीं होता है। इसका असर सारे मारवाड़ी समाज पर, और मारवाड़ी समाज हिन्दू जाति का एक अंश है इसलिये उस पर भी, इतना ही नहीं बल्कि मुसलमान इत्यादि जातियों पर भी पड़ता है। हां मैं मानता हूं कि उन अन्य जातियों पर थोड़ा पड़ता है। इससे आप सोच सकते हैं कि धनिक लोगों पर कितना बोझ है। परन्तु जो धन-वान लोग धन कमाने में मस्त हैं और अहंकार में ईश्वर को भूल गये हैं, उनकी बात दूसरी है।

मारवाड़ी लोगों में धन है। दुराचार होते हुये भी धर्म में प्रेम है। यह बात मैं खूब जानता हूँ। वे प्रति वर्ष धर्म के लिये लाखों रुपये देते हैं, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिये हम दोनों ने सोचा कि बिलकुल सादगी से विवाह किया जाय। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों हैं। जमना लाल जी और केशवदेव जी का, रामेश्वर प्रसाद और कमला का भला सोचना यह स्वार्थ है और दूसरों को मार्ग बताना यह परमार्थ। आप देखेंगे कि इस विवाह में आडम्बर नहीं होगा, नाच-गान नहीं होगा, विवाह के समय केवल धार्मिक-विधियां ही की जायगी। आप लोगो को निमन्त्रण इस भाव से दिया गया है कि आप इसके साक्षी हों और इससे आप सम्मत हो और ऐसी प्रतिज्ञा करे कि आप इसका अनुकरण करेंगे। संभव है कि इसमें मेरी भूल हो और आप ऐसा करना पसन्द न करें। हिन्दुस्तान में चन्द धनिक लोग होने से वह धनिकों का देश नहीं हो जाता। यह कङ्गालों का मुल्क है। यहां पर जितने लोग भूक से मरते हैं और समय पर अन्न न मिलने से व्याधि-ग्रस्त हो जाते हैं और भूख से जड़वत् बन जाते हैं, उतने दुनियां के और किसी देश में नहीं। यह मेरा कहना नहीं है मगर इतिहास-कारों का कथन है—हिन्दू-मुसलमान इतिहास-कारों का नहीं—राज्यकर्ता के कौम के लोगों का यह कथन है। ऐसे कङ्गाल मुल्क के करोड़ पतियों को भी ऐसा काम करने का अधिकार नहीं है, जिससे कङ्गालों के पेट में दर्द हो। धनिक लोग हिन्दुस्तान में ही धन

कमाते हैं। वे बाहर से धन कमा कर धनवान नहीं होते। यों तो बाहर के लोगों को दुःख देकर धन कमाना महा पाप है।

जितने करोड़पति या लखपति हिन्दुस्तान में हैं वे कङ्गालों को और भी कङ्गाल बनाते है। हिन्दोस्तान में सात लाख देहात हैं उनमें बहुतो का नाश हो रहा है, उनका खून चूसा जा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि जिनको एक समय भी खाने को नहीं मिलता है वे लोग मर जाते हैं। इस देश में पशु और मनुष्य दोनों मरते हैं। ऐसी हालत में इतना ही धन खर्च करना चाहिये जो धर्म के लिये अनिवार्य हो और बचा हुआ धन परोपकार मे व्यय करें जिससे हिन्दुस्तान के कङ्गालों का भी भला हो और धनिकों का भी भला हो। इस दृष्टि से हम देखे तो यह विवाह अनुकरणीय है, यह एक सामान्य सुधार नहीं है। इसकी जड़ खूब भीतर जाती है। इसका परिणाम भी अच्छा ही होगा। इस तरह का कार्य अगर गरीब करेगा तो भी उसका काम तो होगा ही, पर इतना प्रभाव नहीं पड़ेगा। जमना लाल जी दस हजार, बीस हजार और पचास हजार भी फेंक दे सकते हैं और उनके मारवाडी भाई भी कहेंगे कि यह कैसा अच्छा विवाह किया; परन्तु उन्होने धन होते हुये भी उसका उपयोग नहीं किया, अपने अधिकार को छोड़ दिया। इसका परिणाम अच्छा ही होगा कारण, गीता जी में भी लिखा है कि श्रेष्ठ लोग जो करते हैं उनका अनुकरण दूसरे लोग करते हैं। यह सच्चा और अनुभव-सिद्ध वाक्य है। मैंने आप का अनुग्रह माना है, और मैं आप को धन्यवाद देता हूँ। आप

कमला और रामेश्वर प्रसाद दोनो को आशीर्वाद देंगे। दूसरे भी ऐसा करेंगे तो अच्छी बात होगी। ऐसा करने से स्वतः की, मुल्क की और धर्म की सेवा होगी। रामेश्वर प्रसाद और कमला दोनो यहां पर है, ऐसा मैं जानता हूँ। दोनो समझते हैं, रामेश्वर प्रसाद समझाता ही है और कमला भी इस उमर की होगई है कि उसके मां-बाप उसको मित्र जैसी समझ सकते हैं। इन दोनों को समझना चाहिये कि इनके माता-पिता जो इतना परिश्रम कर रहे हैं, और जो इतने लोग साक्षी बनने के लिये यहां आ गये हैं; यह विवाह स्वच्छन्द बनने के लिये नहीं, विकार का गुलाम बनने के लिये नहीं। यह दम्पति, आदर्श दम्पति बनने, उनके ऊंचे भाव बढ़ाने के लिये ही यह सब कर रहे है।

गृहस्थाश्रम में भी विकार को दबाने का मौका है। शास्त्र तो यह कहता है कि केवल प्रजा की इच्छा होने पर ही विकार वश मे किए जा सकते हैं। इसको हम भूल गये है और हमको यह बात कोई बतलाता नही। रामेश्वर प्रसाद को यह बात मैं बतलाना चाहता हूँ कि स्त्री, पुरुष की गुलाम नही, वह अर्धाङ्गिनी है, सह-धर्मिणी है; उसको मित्र समझना चाहिये। रामेश्वर प्रसाद स्वप्न मे भी कमला को गुलाम न समझे। हिन्दू धर्म मे भी अभी ऐसे लोग हैं जो स्त्री को अपना माल समझते हैं।

ये दोनो नये जीवन मे प्रवेश करते हैं, मैंने एक बार कहा है, यह तो एक नया जन्म है। यह दम्पति शिव-पार्वती या सावित्री सत्यवान या सीता-राम के समान आदर्श रूप हों। हिन्दू-धर्म ने

स्त्रियों को इतना उच्च स्थान दिया है कि हम सीताराम कहते हैं, राम-सीता नहीं, राधा-कृष्ण कहते हैं कृष्ण-राधा नहीं। अगर सीता नहीं तो राम को कोई नहीं जानता। अगर सावित्री नहीं तो सत्यवान का नाम भी कहीं सुनाई नहीं देता। अगर द्रौपदी न होती तो पाण्डवों का पता भी न चलता। दृष्टान्त खोजने की जरूरत नहीं है। मेरा विश्वास है कि यह कार्य हमको शुभ परिणाम कारक होगा। मुझको ऐसा सोचने का मौका नहीं आने पावे कि मैंने कैसा अकार्य किया। अभी मेरे आयुष्य के शेष दिन रहे हैं, उनमें मैं ईश्वर से डर कर चलना चाहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती है कि यह दम्पति हमारे लिये आदर्श होगी, हमको पश्चात्ताप का कोई मौका नहीं देगी। अन्त में मैं इन दोनों को आशीर्वाद देता हूं कि ये दोनों दीर्घायु हों और अपने बड़िलों को सुशोभित करें और धर्म की रक्षा तथा देश की सेवा करें।

विवाह में सादगी

एक संवाददाता ने हमारे पास करांची के एक विवाह समारंभ के समाचार भेजे है। कहा गया है कि वहां के एक धनवान सेठ श्री लालचन्द जी ने अपनी १६ वर्ष की लड़की के व्याह के मौके पर तमाम फिजूल-खर्चियो को बन्द कर दिया और विवाह समारभ को उदात्त धार्मिक रूप देकर उस अवसर पर कम से कम खर्च किया। समाचारो से पता चलता है कि सारे समारंभ मे दो घण्टे से ज्यादा का समय नहीं लगा, वैसे आमतौर पर विवाह के मौको पर कई दिन तक फिजूल-खर्चियां होती रहती है। विवाह-विधि का सारा काम एक विद्वान् ब्राह्मण की देख-रेख मे उन्हीं के हाथो कराया गया था। उन्होने वर-कन्या को उन सब मन्त्रो का अर्थ भी बतलाया जो वर-वधू को बोलने पड़े थे। मै सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नी की, जिन्होने इस बहुत दिनो से अपेक्षित सुधार के कार्य मे अपने पति का पूरा-पूरा साथ दिया है, हृदय से बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि देश के दूसरे धनी लोग भी सर्वत्र इस

उदाहरण का अनुकरण करेंगे। खादी-प्रेमी यह जान कर प्रसन्न होंगे कि सेठ लालचन्द और उनकी धर्मपत्नी पक्के खादी-प्रेमी है और दोनों वर-वधू भी खादी मे पूर्ण श्रद्धा रखते और सदा खादी पहनते हैं। यह विवाह समारंभ मुझे आगरा के विद्यार्थियों की सभा का स्मरण कराता है; उन्होंने एक मित्र द्वारा दी गई सूचना को पुष्ट किया था कि संयुक्त-प्रान्त के कालेजों और विद्यालयों मे पढ़ने वाले विद्यार्थी छोटी उम्र मे व्याह दिये जाने के लिये उत्सुक रहते है और एक तरह से माता पिताओं को क़ीमती वस्तुए खरीदने फिजूल-खर्ची करने एवम् बड़े-बड़े भोज या उम्दा दावते देने को विवश करते है। मेरे मित्र ने कहा था कि अत्यन्त उच्च शिक्षा प्राप्त माता-पिता भी सम्पत्ति के मिथ्याभिमान से बरी नहीं है, और इसलिए जहां तक रुपया बहाने से सम्बन्ध है, वे अनपढ़ मगर धनवान व्योपारियों को भी मात कर देते है। ऐसे सब लोगो के लिए सेठ लालचन्द जी का ताज़ा उदाहरण और सेठ जमनालाल जी का कुछ समय पूर्व का उदाहरण; एक पदार्थ-पाठ होना चाहिये जिससे उत्तेजना ग्रहण कर वे तमाम फिजूल-खर्चियो से हाथ खींच ले। किन्तु माता-पिताओं से अधिक नवयुवकों का यह कर्त्तव्य है कि वे बाल-विवाह का ज़ोरों से विरोध करें, ख़ास कर विद्यार्थी-अवस्था मे विवाहों का तो खूब ही विरोध करे और हर तरह तमाल फिजूल-खर्चियो को बन्द करवावे।

विवाह की धार्मिक विधि के लिए तो १०) से ज्यादा की जरुरत न होती है, न होनी चाहिये और न विवाह-विधि के सिवा और किसी बात को विवाह का आवश्यक अंग ही मानना चाहिए। प्रजातन्त्र-वाद के इस जमाने मे जब कि धनी-निर्धन, ऊँच-नीच आदि के भेदों को मिटाने का प्रयत्न किया जा रहा है, धनिको का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने भोग-विलास और आमोद-प्रमोद पर अंकुश रख कर गरीबो के लिये सन्तोषी-जीवन बिताने का उदाहरण रखे और भगवद् गीता के इस कथन को याद रखें कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजन:

यानी बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं, जन साधारण उसी को आदर्श मान कर चलते हैं। इस कथन की सचाई हम अपने रात-दिन के व्यवहार मे प्रति-पल अनुभव करते हैं, खास कर विवाह के अवसरों और मौत के बाद की क्रियाओ मे। केवल इसी नकल के कारण हजारों गरीब लोग अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं से हाथ धो बैठते हैं और सर्वनाश-कारी व्याज की दरों पर ऋण-भार से जिन्दगानी भर दबे रहते हैं। राष्ट्रीय-शक्ति और साधनों का यह अमित दुरुपयोग सहज ही रोका जा सकता है, बशर्ते कि देश के नौजवान, खासकर लक्ष्मी-पुत्र, अपने लिए होने वाली हर तरह की फिजूल-खर्ची के कट्टर दुश्मन और विरोधी बन जायं।

विवाह का तत्त्व ज्ञान

[थर्स्टन नामक अमेरिकन लेखक की 'विवाह का तत्वज्ञान, नामक पुस्तिका के मुख्य अश का सारांश नीचे दिया जारहा है।

पुस्तक के प्रकाशक का कहना है कि लेखक महोदय अमेरिका की सेना मे १० वर्ष नौकर रहे और ' मेजर ' के पद तक पहुँच कर सन् १९१९ में नौकरी छोड़ कर निवृत्त हुए, तब से वे न्यूयार्क में रहते है । इन १८ वर्षों मे उन्होंने जर्मनी, फ्रांस, फिलिपाइन्स-द्वीप-समूह, चीन और अमेरिका मे विवाहित दंपतियों की स्थिति का खूब अध्ययन किया है। इस अभ्यास के मूल में लेखक की अपनी अवलोकन शक्ति तो है ही किन्तु इसके अतिरिक्त उन्होने प्रसूति-शास्त्र मे निपुण तथा स्त्री-रोग चिकित्सक सैकड़ों डाक्टरो से पत्र-व्यवहार भी किया। लेखक ने इसके अतिरिक्त सेना मे भर्ती होने वाले उम्मेदवारों की शारीरिक योग्यता की जांच से आंकड़ो तथा सामाजिक आरोग्य-रक्षक मंडलो के इकट्ठा किये दूसरे आंकड़ो का भी ठीक उपयोग किया है। लेखक के सैकड़ों डाक्टरों से पूछे हुये प्रश्न और उनके उत्तर सुनिये]

प्र०—आजकल विवाहित स्त्री-पुरुषों मे सगर्भावस्था मे भी संभोग करने का रिवाज पड़ा हुआ है या नही ?

लगभग सभी का जवाब यही था कि ऐसा रिवाज पड़ा हुआ है।

प्र०—इसप्रकार संभोग करने से गर्भ का तथा गर्भिणी का विषाक्त हो जाना संभव है या नहीं ?

उ०—अवश्य संभव है।

प्र०—इस संभोग के परिणाम-स्वरूप जो बालक होंगे, उनके अग विकृत होने की संभावना है या नहीं ?

बहुत से डाक्टर तो किसी विशेष अवस्था तक संभोग करने की इजाज़त ख़ुद देते हैं और इसलिये वे कैसे लिखें कि बच्चो के अंग विकृत होते हैं ! मगर तो भी सैकड़े पीछे २५ ने तो लिखा है कि इस संभोग के परिणाम-स्वरूप विकृत अंगवाले बालक पैदा होते हैं।

प्र०—अगर विकृतांग बालकों के जन्म का कारण सगर्भा-संभोग न हो तो और क्या हो सकता है ?

उत्तरो मे बहुत भेद है और बहुत से लिखते है कि हम कारण नहीं बतला सकते।

प्र०—आज कल की शिक्षिता स्त्रियां गर्भाधान रोकने के लिये क्या कृत्रिम साधनों का इस्तेमाल करती हैं ?

उ०—हां

प्रा०—इन साधनो से अगर और कुछ नही तो क्या उनकी

जननेन्द्रिय को हानि पहुँचना सभव है या नहीं ?

७५ प्रतिशत डाक्टर लिखते हैं कि संभव है।

इसके अलावा लेखक ने बहुत से दिल को दहलाने वाले आंकड़े दिये हैं जो विचारणीय हैं। सन् १९२० में अमेरिका की सरकार ने 'सेना मे' लिये जाने वाले लोगों की त्रुटियों के सम्बन्ध में एक किताब छापी थी; उसमे से ये आंकड़े दिये गये हैं—

सेना मे भर्ती करने की योग्यता के संबध मे कितने आदमियों की परीक्षा ली गयी ?

—२५ लाख १० हजार।

इनमें से कितने किसी न किसी शारीरिक या मानसिक बीमारी से ग्रसित थे ?

—१२ लाख ९८ हजार।

कितने सेना-संबन्धी काम के लायक न थे ?

—५ लाख ४९ हजार।

इतनी जांच के पश्चात् तथा अपने कई सम-व्यवसायी डाक्टरों के अनुभव पर से लेखक ने कई अनुमान निकाले हैं जो उसके ही शब्दों मे दिये जाते हैं।

१—केवल इसीलिए कि पुरुष स्त्री की परवरिश करता है और स्त्री उसकी विवाहिता कहलाती है वह पुरुष की गुलाम बनकर रहे और नित्य एक ही घर में उसके साथ रह कर अथवा एक ही बिस्तर पर सोकर नित्य ही उसके विषय का साधन बने, यह प्रकृति का नियम नहीं है।

२—सर्वत्र ऐसा रिवाज पड़ गया है कि विवाह-बंधन में पड़ने से ही पुरुष की विषयेच्छा को सतुष्ट करने के लिये स्त्री बंधी हुई है और इस रिवाज के परिणाम स्वरुप रात दिन विषय-भोग का अमर्यादित साधन बन कर विवाहिता स्त्रियों मे से नव्बे प्रतिशत तो वेश्या के समान जीवन बिताती ही हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने का कारण यह है कि विवाहिता स्त्री का पति के साथ वेश्यापन स्वाभाविक और उचित माना जाता है क्योंकि विवाह का कानून ऐसा ही बतलाता है और यह भी माना जाता है कि पति का प्रेम कायम रखने के लिये स्त्री उनकी इच्छा पूरी करने को बंधी हुई है।

इसप्रकार से प्रचलित निरंकुश विषय-भोग के अनेक भयंकर परिणाम देखने में आते हैं—

क—स्त्री के ज्ञान-तंतु अतिशय निर्बल पड़ जाते है, शरीर रोग का घर बनता है, स्वभाव चिड़चिड़ा और उत्पाती हो जाता है, और जो बालक पैदा होता है, उसकी भी पूरी सेवा-संभाल वह नहीं कर सकती है।

ख—गरीब-वर्ग मे इतने बालक उत्पन्न होते है कि उन्हें पूरा पोषण देना, उसकी सेवा संभाल रखना, असम्भव हो जाता है। ऐसे बालकों को कई प्रकार के रोग हो जाते है, और बड़े होने पर वे कई प्रकार के कुकृत्यो के शिकार हो जाते हैं।

३—उच्च वर्ग में निरंकुश विषय-भोग के कारण प्रजोत्पत्ति को रोकने के लिए गर्भ-पात के साधनों का उपाय काम में लाया जाता है। इन साधनो का उपयोग अगर आम-वर्ग की स्त्रियो को सिखलाया जाय तो प्रजा रोगी, अनीतिमान् और कष्ट-प्रद होगी और अत मे उसका विनाश ही होगा।

४—अतिशय संभोग के कारण पुरुष का पुरुषत्व नष्ट होता है, वह काम करके अपना निर्वाह करने को भी अशक्त होता है, और अनेक रोगो के परिणाम स्वरूप वह अकाल मे ही मृत्यु को प्राप्त होता है। अमेरिका में आज विधुरो की अपेक्षा २० लाख अधिक विधवाएं हैं। इन विधवाओ में बहुत ही थोड़ी सी लड़ाई के परिणाम से विधवा बनी हैं। विवाहित पुरुषो का बड़ा भाग ५० वर्ष की उम्र तक पहुँचने के पहले ही जर्जरित हो जाता है।

५—अतिशय संभोग के कारण पुरुष और स्त्री दोनो में एक प्रकार की विरक्ति सी आ जाती है। दुनियां में आज जो दरिद्रता है, शहरो मे जो गंदे और गरीब मुहल्ले है, वे आदमी को मजदूरी न मिलने के कारण उत्पन्न नहीं हुए है। बल्कि वे आजकल की वैवाहिक स्थिति के कारण उत्पन्न होने वाले निरंकुश विषय-भोग के परिणाम हैं।

६—सगर्भावस्था मे स्त्री के विषय-भोग के साधन बनने के कारण भविष्य अतिशय भयकर तथा अंधकारमय है। सगर्भावस्था मे सभोग आदमी को पशु से भी हीन बनाता है।

सगर्भा गाय सांड़ को अपने पास कभी आने ही नहीं देगी मगर तोभी यदि सांड़ उस पर अत्याचार कर ही लेवे तो जो बछड़ा पैदा होगा, उसके तीन या पांच पैर होंगे या दो पूछें होंगी या दो सिर होंगे यानी वह विकृतांग होगा। केवल मनुष्य ही ऐसी बात मानता हुआ जान पड़ता है कि पशुओं को ऐसे अत्याचारों के जो परिणाम भोगने पड़ते हैं वे केवल एक मात्र मनुष्यों को ही नहीं भोगने पड़ते हैं। इस के पीछे भी एक भ्रम छिपा हुआ है। यह भ्रम है कि पुरुष से बहुत दिनों तक विषय को शान्त किए विना रहा ही नहीं जा सकता। इस धर्म की उत्पत्ति भी स्पष्ट है। हमेशा ही अगर बिस्तर पर विकारोत्तेजक साथी हो तो पुरुष कैसे विषय शान्त किये विना रह सकता है? किन्तु डाक्टरों के अनुमान तथा अवलोकन के परिणाम-स्वरूप जाना गया है कि गर्भाधान के पहले की स्थिति में अगर अतिशय संयोग अनिष्ट-मूलक है तो सगर्भावस्था मे होने वाला सयोग तो नरक की खान ही है—और इसके परिणाम-स्वरूप बालकों मे ठेठ पागलपन तक के रोग आने संभव हैं और खुद स्त्री के अपने दुःख का पार नहीं रहता। क्योंकि सगर्भावस्था मे किसी स्त्री को संभोग की इच्छा नही होती।

इसके बाद लेखक चीन, हिन्दुस्तान और अमेरिका मे एक ही घर और एक ही कमरे मे अनेक स्त्री पुरुष के सोने से अनीति तथा निर्वीर्यता का जो महारोग आया है, उसकी बात करते हैं और फिर इस स्थिति के निवारण के उपाय बतलाते हैं।

इन उपायों मे कितने तो विवाह के कानून मे सुधार करने के है मगर इनके अतिरिक्त, जो उपाय आदमी के हाथ मे हैं, लेखक महोदय उनको भी बतलाते हैं। क़ानून में सुधार तो जब होगा तब होगा, किन्तु मनुष्य के पास सुधार करने के व्यक्तिगत अधिकार तो हैं ही—

१—इस सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिये कि प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना स्त्री-पुरुष का संयोग नहीं होना चाहिये।

२—इस सिद्धान्त का प्रचार करना चाहिये कि स्त्री की प्रजोत्पत्ति की इच्छा के बिना, उसे स्पर्श करने का अधिकार केवल पति होने के कारण ही पुरुष को नहीं मिलना चाहिये।

३—इस ज्ञान का प्रचार करना चाहिये, कि केवल विवाह-सम्बन्ध में जुड़ जाने से ही स्त्री पति के साथ एक ही कमरे में, एक ही बिस्तर पर सोने के लिये 'बंधी हुई नहीं है' और इतना ही नहीं बल्कि प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना इस तरह से सोना गुनाह है।

लेखक महोदय कहते हैं कि इतने नियम का पालन हो तो जगत के आधे रोगों का नाश हो जायगा, ग़रीबी नष्ट होजायगी, रोगी तथा विकलाङ्ग बालक पैदा नहीं होंगे, विरोध द्वेष और वैर का कड़वापन दूर हो जायगा। स्त्रियो के प्रति कीगई सख्तियां भी रुकेगी, और स्त्री-पुरुष को जन-कल्याण के लिये पुरुषार्थ करने का मार्ग अधिक परिष्कृत होगा।

(नव जीवन)

सब रोगों का मूल

दो सप्ताह पूर्व के 'विवाह का तत्व ज्ञान' नामक पुस्तक का सार 'नवजीवन' में दिया गया था। उस पुस्तक के लेखक ने उसे अपने मित्रों मे भेट की होगी। उनमे से एक बहन ने उन्हे एक पत्र लिखा है और उनके उस पत्र के प्रत्युत्तर में अपने विचारों को विशेष स्पष्ट करने वाली और अपने बतलाये हुए अभिप्राय को अकाट्य दलीलो से अधिक मजबूत करने वाली एक और दूसरी छोटी पुस्तक उन्होने प्रकट की है। यह पुस्तक पहली पुस्तक से विशेष मननीय और महत्व-पूर्ण है।

उस बहन के पत्र का मजमून संक्षेप मे यो है। "आपकी पुस्तक के लिये बहुत धन्यवाद। अत्यन्त विषय-सेवन ही हमारे रोगों का मुख्य कारण है, ऐसा बतलाने वाली आपकी पुस्तक पहली ही कही जा सकती है। विषयेच्छा महापुरुषों मे भी होती है। यद्यपि कुछ महापुरुष इस से मुक्त कहे जा सकते हैं। कई एक सामान्य मनुष्यो मे यह अत्यन्त प्रबल होती है। परन्तु इस की वास्तविक शारीरिक आवश्यकता कितनी है, सिर्फ मान ली हुई आवश्यक्ता कितनी है और केवल आदत पड़ जाने से

कितनी बढ़ी है, इसकी जांच करना जरूरी है। तीन वर्ष तक समुद्र पर व्हेल का शिकार करने जाने वाले पुरुष के शरीर पर या ऐसे ही अन्य कारणों से लम्बी मुद्दत तक स्त्री से जुदा रहने वाले पुरुष के शरीर पर इसका क्या असर होता है, यह जानना हमें आवश्यक प्रतीत होता है। एक बात और है। अति विषय-भोग का अनिष्ट जो आपने बतलाया है, मुझे क़बूल है, परन्तु गर्भाधान रोकने के लिए कृत्रिम-साधनों की जरूरत क्यों आप नहीं समझते ? गर्भपात या अविवाहितों से होने वाली प्रजोत्पति की अपेक्षा कृत्रिम साधनों के उपयोग द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकना कहीं बेहतर है। प्राकृतिक नियमों से विरुद्ध चलने वाले मनुष्य प्रजोत्पत्ति रोकने के परिणाम-स्वरूप बाँझ हो कर बिना प्रजा के मर जायं तो उसमें समाज का क्या बिगड़ता है ? एक तीसरी बात यह है; मान लो कि हम अब संयमी बन गये तो भी सामाजिक प्रमाण तभी निभ सकता है जब सामान्यतः प्रत्येक दंपति को तीन संतान से अधिक न हों और इसका यही अर्थ हो सकता है कि दम्पति को चाहिये कि अपने जीवन में संयम के साथ विषय सेवन करें। सयम क्या शक्य है ? शक्ति-सम्पन्न तथा सुन्दर स्वास्थ्य भोगने वाले, पुरुषार्थी मनुष्य क्या दीर्घ काल तक संयम का पालन कर सकेंगे ?"

दो कामनाएं—इस पत्र के प्रत्युत्तर में लिखी गई पुस्तक का सारांश आगे देते हैं:—

सामान्य पुरुषों मे आहार के अतिरिक्त दो कामनाएं रहा करती हैं, एक कामना सुन्दर स्त्री के संग विषय-सेवन की और दूसरी कामना पुरुषार्थ की अर्थात् धर्म्म, अर्थ और मोक्ष की। दोनो मे परस्पर सम्बन्ध है, और दोनों परस्पर असर करने वाली है। मनुष्यो मे विवाह होने से पूर्व अत्यत विषय-भोग भोगने से पुरुषार्थ की कामना मर सी जाती है और कई मे विवाह के बाद अत्यंत विषय सेवन से मर जाती है अथवा मंद पड़ जाती है। आरोग्य सुख भोगने वाले वीर्यवत पुरुषों मे विषयेच्छा समान होती है, परन्तु यदि पुरुषार्थ की कामना प्रबल हो जाय तो विषयेच्छा दीर्घकाल तक के लिये मद पड़ जाती है। सच्ची जरूरत है किसी महान ध्येय की और ध्येय की प्राप्ति मे मनुष्य अपनी समग्र शक्ति खर्च कर डालने का संकल्प कर ले। ऐसे ध्येय अनेक हैं। एक सामान्य ध्येय तो उत्तम प्रजोत्पत्ति का है। अपनी स्त्री को स्वाभाविक संतानेच्छा होवे तब उसकी इच्छा तृप्त करने से, स्त्री को प्रसन्न रख कर आरोग्य-सपन्न बालक पैदा करने से, उस बच्चे का पालन पोषण करने मे, उसे शिक्षित बनाने मे, उसे योग्य नागरिक बनाने मे संलग्न रहने से विषयेच्छा लुप्त हो जानी चाहिये। इन तमाम प्रवृत्तियों के लिए उसे शारीरिक शक्ति प्राप्त करनी ही चाहिये, शारीरिक-श्रम भी खूब करना चाहिये। इसके सिवा उसे चाहिये कि स्त्री के साथ एक बिछौने मे न सोवे। दूसरा ध्येय है कीर्ति का। मनुष्यों की सेवा करके

अथवा अन्य कोई भारी पराक्रम कर दिखला के नाम कमा कर संभव है कि मनुष्य यश को प्राप्त करके विषयेच्छा विशेष अच्छी तरह भोगने का अवसर प्राप्त करना चाहे किन्तु यह कीर्ति की लालसा मूल वासना को उसी समय दबा भी देती है। प्रजा के आदर्शों की माता स्त्री होती है, ये आदर्श स्त्री से पुरुषों में आते हैं, इन आदर्शों को पूरा करने का प्रेरणा-उत्साह भी स्त्रियों से मिलता है। अर्थात् मैं कहूँगा कि जिस समाज मे स्त्री ऊर्वशी के समान विक्रम के वश है। वह समाज उत्कर्ष-शाली है। जिन देशों में स्त्री का मूल्य अल्प है, अर्थात जहां स्त्री प्राप्त करने मे पुरुषो को कुछ भी मिहनत नहीं करनी पड़ती है उन्हीं देशों मे गरीब अधिक होते है, और वहीं गंदगी का घर होता है।

ह्वेल की शिकार को जाने वाले, स्त्री के वियोग को दीर्घ काल तक सहने वाले मांझियों की दशा का प्रश्न तुमने पूछा है। इन लोगो को खूब काम करना पड़ता है, इसलिए उनके आरोग्य पर तो विषयेच्छा की अतृप्ति का कोई असर पड़ेगा ही नहीं। यदि इन लोगो को कोई काम न हो तभी उन्हे विषय-तृप्ति की अनेक बुरी आदतें पड़ सकती है। ये मनुष्य शिकार से वापिस लौट कर अपनी सारी कमाई विषय-भोग और मदिरा-पान मे गंवा देते हैं क्योंकि इसी ध्येय को सामने रख कर वे शिकार को जाते है।

कृत्रिम साधन—कृत्रिम साधनो द्वारा प्रजोत्पत्ति रोकने का जो प्रश्न तुमने पूछा है, वह गंभीर है, उसका जवाब कुछ

विस्तार से देना पड़ेगा। इन साधनों से नुकसान नहीं होता ऐसी गवाही तो कोई भी नही देगा। ऐसा मैं अपनी खोजो और अवलोकन के परिणाम-स्वरूप जोर देकर कह सकता हूं।

अनुभवी तथा ज्ञानवान स्त्री-रोग-चिकित्सक तो साफ-साफ कहते है कि इन साधनो का असर शरीर और नीति पर बुरी तरह पड़ता है, और यह स्पष्ट भी है। देखिये एक दो बातें विचारने योग्य हैं। बालक उत्पन्न हो, इस प्रकार की इच्छा न होने से समय का प्रेरक बल एक भी नही रहता। मनुष्य स्त्री से संतुष्ट होजाता है और उसकी पुरुषार्थ कामना मंद पड़ जाती है। स्त्री उसको दूसरी स्त्रियो के पास जाने से रोकने के लिये उसे अपना ही गुलाम बनाने की चेष्टा करती है। लम्बे समय तक गर्भाधान का विरोध करने से उनकी विषयेच्छा प्रबल बन जाती है; इसका नतीजा यह होता है कि कुछ ही वर्षों मे पुरुष निर्वीर्य बन जाते हैं और किसी भी रोग का सामना करने की उनकी शक्ति का ह्रास होजाता है। कई मर्त्तबा इस निर्वीर्यता को रोकने के लिये अनेक बेहूदे साधनो का उपयोग किया जाता है और परिणाम निकलता है कि स्त्री पुरुष एक दूसरे को तिरस्कार की निगाह से देखते हैं और आखिर विवाह-विच्छेद का मौका आजाता है।

जानकर मनुष्य कहते हैं कि स्त्रियों को होने वाले कैन्सर जैसे रोगो का मूल इन कृत्रिम साधनो के उपयोग मे है। स्त्रियो के कोमल से कोमल मज्जा-तंतुओ पर इन साधनों का अत्यन्त बुरा

असर पड़ता है और उनसे से अनेक रोग पैदा होते है। कई एक प्रतिष्ठित डाक्टरों का ऐसा कहना है कि इन कृत्रिम-साधनो का नतीजा यह निकलता है कि स्त्रियां बांझ हो जाती हैं, स्त्री का जीवन शुष्क हो जाता है और उसका ससार ज़हर बन जाता है।

न्यायाधीश लिंडसे का भ्रम—अमेरिका के जज लिडसे ने इन कृत्रिम-साधनों की खोज को बहुत बड़ा महत्व देदिया है और उससे जो भयंकर नाश होता है, उसका उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं। देखिये, पेरिस मे पचहत्तर हज़ार तो रजिस्टर की हुई वेश्याएं हैं, और उनसे कई गुना अधिक रजिस्टर न की हुई खानगी वेश्याए है। फ्रान्स के अन्य शहरो मे भी इस रोग की कुछ हद नहीं, जननेन्द्रिय के रोगों का भी कोई अन्त नहीं है। हज़ारों की सख्या मे स्त्रियां इन्ही रोगो से दुःखित हो डाक्टरो की तलाश मे रहती हैं। कई एक वर्ष से फ्रान्स मे जन्म-संख्या मृत्यु-सख्या से कहीं गिरी हुई है। नैतिक दृष्टि से फ्रान्सवासियो का नाम जगत मे अरुचि पैदा करने वाला वन चुका है और फ्रान्स की पुत्रियां गुलामी के व्यवसाय मे अधिक लगी हैं। गत १०० वर्ष मे फ्रान्स का यह हाल हुआ है फिर भी जज लिडसे को अपने साधनो को नयी खोज के नाम से वर्णन करने में शर्म नहीं आती।

इससे भयंकर बात तो यह है कि जहां एक बार ऐसे कृत्रिम साधनों का प्रचार बे धड़क होने लग गया कि फिर इस अत्यन्त

हीन ज्ञान को रोकने का एक भी उपाय नहीं रह जाता है और उसके प्रचार को रोकने की किसी मे भी शक्ति नही रहेगी, और ये बाते सब से पहले प्रजा के युवाओं में पहुँचती हैं। फ्रान्स के वेश्या-गृहों मे कोमल उम्र की कुवारी और विवाहिता अभागिनी स्त्रियो के यौवन के क्रय-विक्रय की दूकानें लग गई हैं।

जज लिंडसे ने अपने देश के युवा अपराधियों के जवानी प्राप्त होने वाले बयानो का उलटा अर्थ लगाया है, अपनी पुस्तक मे इन कृत्रिम-साधनों की सिफारिश करके उन्होने तमाम प्रजा को उलटी राह मे लगा दिया है।

परन्तु उनकी ही पुस्तक मे उनके दिये गये प्रमाण का रहस्य उनको क्यों नहीं सूझा होगा ? वर्जिनिया एलिस नामक एक स्त्री का पत्र उन न्यायाधीश महाशय ने अपनी किताब मे दिया है। यह बेचारी लिखती है कि मै चार होशियार डाक्टरो से मिल चुकी हूँ: मेरे पति दूसरे दो डाक्टरो से सलाह ले आये हैं: इन छहों डाक्टरों ने सलाह दी है कि कृत्रिम उपायो को काम मे लाने से कुछ समय तक के लिये तन्दुरुस्ती पर चाहे कुछ असर न दिखाई पड़े परन्तु थोड़े ही वक्त के बाद स्त्री-पुरुष दोनों ही हाथ मलते है, कई मर्त्तबा अपेन्डिसाइटीस, (पेट की एक बीमारी) जैसे आपरेशन इस अनिष्ट से पैदा होने वाले कारणों का ही नतीजा है। क्या ये डाक्टर झूठे है ? ऐसा कहने में

उनको कोई लाभ नहीं है। उलटे कृत्रिम साधनो का उपयोग करने का रोग बढ़ता है और उनकी रोजी ठीक चल सकती है परन्तु ये डाक्टर अनुभवी प्रतिष्ठित और लोक-हित के जानने वाले थे।

जज लिंडसे और उसके अनुयायी उन कृत्रिम-साधनों के प्रचार मे बुरी तरह से गिरे हैं। यदि यह अत्याचार बढ़ता ही रहा तो देश मे हज़ारो नीम-हकीम इन साधनों को लेकर फिरते रहेंगे और देश को अत्यन्त नुकसान पहुँचायंगे।

जज लिन्डसे ने स्वयं प्रजोत्पत्ति रोकने वाले साधनों का एक प्रचारक मण्डल स्थापित किया है और उसे सतयुग के उदय करने वाली एक संस्था के तौर पर वर्णन करते हैं। सतयुग तो दूर रहा परन्तु भयंकर कलियुग उससे पैदा होगा इस विषय मे जरा भी सन्देह नहीं है। जन-साधारण में इन साधनों का प्रचार हुआ कि लोग बुरी तरह से मरेंगे, दुःखी हो-हो करके मरेंगें। सम्भव है इसप्रकार सत्यानाश होगा तभी कहीं भावी प्रजा इन साधनो से महामारी की तरह दूर भागना सीखेगी।

जज लिडसे की नीयत बुरी नहीं है। उनका तो उद्देश्य यह है कि प्रत्येक कुटुम्ब में बच्चों का बढ़ना रुक जायगा। स्त्री की इच्छा के माफिक ही बच्चे पैदा हो और जितने बच्चे आसानी से पुरुष पालन कर सके, उतने हो; उनका यही उद्देश्य है। स्त्रियों में विषयेच्छा की जो स्वाभाविक इच्छा है उसे तृप्त करने

का योग्य साधन उनके सामने रक्खा जाय। इस बात का पिशाच-भूत, कोर्ट में आनेवाली निर्लज्ज लड़कियों ने उस जज के सिर पर सवार किया है। मेरा तो यह विचार है कि उसकी अदालत में आनेवाली लड़कियों के जैसे गवाही देनेवाली लड़कियां अपवाद रूप ही समझी जा सकती हैं। दूसरी कई एक लड़कियो से मैं मिला हूँ, वे विषयेच्छा की बातो को जज लिंडसे के समक्ष बयान देने वाली लड़कियो के सामने कवित्व और तत्व-ज्ञान का मुलम्मा चढ़ा कर भी नहीं कर सकतीं। कई एक समझदार लड़कियां और माताएं जानती है कि यह इच्छा केवल भ्रम है।

परन्तु जज साहब के समीप ऐसी कई एक नासमझ लड़कियां कई वर्षों से आती हैं, इसी से उनके जैसे विवाहित, तथा बड़ी उम्र के विद्वान पुरुष से भी उलटी राह ली और इच्छा न होने पर बालक न हों उन्होंने ऐसे साधनो की पुस्तक लिख डाली नही तो ऐसा कौन होगा कि जो इतना ज्ञान होने पर भी पथ भूल कर के कालेज के विद्यार्थियो को आनन्द पूर्वक सहचर सुख भोगने को कहे और उसके क़ानून बनाने की हल-चल मचाये? यदि उनका ज्ञान ठिकाने होता तो उन्हे मालूम हो सकता था कि कई एक सुन्दर, तेजस्वी जवानों को वे इस पाप से आत्महत्या करना सिखाते हैं क्योंकि उनका पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है और साथ ही साथ जीवनेच्छा भी नष्ट हो जाती है। यदि जज लिंडसे को इस बात की खबर होती कि जवानी

में विषयेन्द्रिय को भड़काने से युवा लोग शराबी, चोर, लुटेरे और निठल्ले बन जाते है, यदि जज लिडसे की बुद्धि पर पत्थर न पड़ा होता तो क्या वे यह लिखते कि पुरुष की विषयेच्छा तृप्त करने का और उसकी वेश्या वनने का स्त्री का धर्म है ?

एक ही मार्ग है—इन अक्ल के दुश्मनों को कौन समझावे कि प्रजा मे जन्म-मृत्यु की जो विशेषता दिखाई पड़ती है उसे रोकने का सिर्फ एक ही मार्ग है, और वह है विषय-भोग से निवृत्ति। इन लोगो की आँखें यह क्यो नहीं देख सकतीं कि पशुओ में भी यही उपाय श्रेष्ठ है ? ये लोग क्यों नहीं समझते कि इन कृत्रिम साधनो से स्त्रियाँ वेश्याएं और कुपथ-गामिनी बनती हैं और पुरुष नपुसक, हिजड़े बनते है ?

आरोग्य के लिये विषय-भोग की आवश्यकता है, इस भ्रम को दूर करना प्रत्येक डाक्टर और अनुभवी सलाह कार का कर्त्तव्य है। मैं अपने अनुभव और अनेक डाक्टरो से सलाह के बाद कहता हूँ कि कई वर्षो तक विषय-भोग न करने से कुछ भी हानि नहीं होती परन्तु वरावर लाभ होता है। कई एक युवाओ मे उछलता हुआ उत्साह और प्रकाशमान तेज दिखाई पड़ता है, वह उनके विपय-भोग का नही, किन्तु उनके संयम का फल है। हरेक पुरुषार्थी मनुष्य समझे वे समझे इस सूत्र का पालन करे। विषय की कामना तृप्त करने मे खर्च की जाने वाली शक्ति पुरुषार्थ-सिद्धि मे

आसानी से लगाई जा सकती है, जितना अधिक शक्ति का संयम होगा उतनी ही अधिक सिद्धि होगी।

मनुष्य कई सदियो से कीमिया की तलाश मे भटकते हैं। इस सूत्र मे जो कीमिया भरा है वैसा और कहां मिलेगा?

स्त्रियों का कर्त्तव्य—स्त्रियों को भी जागृत हो जाना चाहिये, सावधान हो जाना चाहिये। "हम पुरुषो के विषय का साधन नही है" ऐसा उन्हें दृढ़ निश्चय करना चाहिये, और ऐसे साधन के रूप मे उपयोग मे आने का सख्त विरोध करना चाहिये। पुरुष कमा कर उसे खिलावे उसके बदले मे इतना सारा तूफान क्या? वे घर गृहस्थी चलावे, बच्चो को पाले, बच्चा को तालीम दें, घर मे प्रसन्नता भर दे, घर मे बच्चो और पति को चैतन्य मय बना दे, और अपने नये खिलते हुये पुत्र पुत्रियो को सीधी राह पर लगा रक्खे, इससे अधिक स्त्री का कर्तव्य क्या हो सकता है? और उस कर्त्तव्य के उपहार मे उन्हे पारितोषिक दिया जाना चाहिये। स्त्रियो के लिये खास सुविधाये कर देना चाहिये।

जैसे पुरुष विषयेच्छा को पुरुषार्थेच्छा मे बदल देता है अथवा कर्मशीलता में भूल जाता है, वैसे ही स्त्री भी कर सकती है। महान् आदर्शों को सामने रख कर, अपने यौवन धन, अपने सौंदर्य और अपनी तमाम आकर्षण शक्ति को लेकर एक अबला भारी से भारी पुरुषार्थ साध सकती है। सब से ऊंचा आदर्श इतिहास मे जोन आफ् आर्क का है। उसमे उसके निष्कलंक कौमार्य, तथा उसका निर्मल ब्रह्मचर्य के

सिवा दूसरा कौन सा बल था ? फ्रान्स मे १५ वीं सदी मे कैसी भयंकर स्थिति फैली हुई थी ! दारिद्र, दुःख और दुष्टता का हर ओर साम्राज्य था फरांसीसी सेना अंग्रेजी सेना से वर्षों से हार खा रही थी। सैनिक निस्सत्व और निर्वीर्य थे। फ्रान्स में मुर्दे, ढेरों में सड़ते थे, राजा भाग निकला था, स्त्रियों मे सतीत्त्व जैसी कोई वस्तु बाकी नही रही थी। ऐसे मौके पर जोन आफ् आर्क नामक अशिक्षिता किन्तु अत्यन्त वीर और बुद्धिमती कुमारिका आगे आई। लोग नही मानते थे कि वह पवित्र होगी। वे खयाल करते थे कि वह भी फ्रान्स की हजारों कन्याओं जैसे होगी। सोलह वर्ष की लड़की क्या अखण्ड कौमार्यवती रह सकती है ?

उसके कौमार्य की जांच करने को एक कमीशन बिठाया गया। उस कन्या का दावा सिद्ध हुआ। बुद्धिमान् मनुष्यों ने उसको चाँदी का बख्तर पहनाया और उसे लश्कर की सेना नेत्री बनाया। मानो उस लड़की ने बिजली फूंक दी हो, इस प्रकार मृत्यु का भय छोड़ कर उसकी सेना लड़ी। उसके ब्रह्मचर्य का लोगों पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा, नामर्दों मे पुरुषत्व आया और कई वर्षों से होने वाली लड़ाई का अन्त इने-गिने दिनों मे होगया तथा अंगरेजों के पैर फ्रान्स से निकल गये। इतिहास मे कुमारिका जोन अद्वितीय है। परन्तु आज जो प्रवाह बह रहा है, उस प्रकार यदि स्त्री, विषय का पात्र बन जाय; पुरुष उसे इसी प्रकार भ्रष्ट करते रहे, और इसी प्रकार प्रजो-

त्पत्ति रोकने वाले कृत्रिम साधनों का सर्वत्र प्रचार होता रहा तो सत्यानाश अवश्यम्भावी है । उस सत्यानाश के दूर करने के लिए फिर पीछे जोन आफ आर्क की तरह किसी ब्रह्मचारिणी तपस्विनी की आवश्यकता होगी ।

यह मैं मानता हूँ कि सभी स्त्रियां जोन आफ आर्क नहीं हो सकतीं, ऐसी दशा मे चाहे वे पवित्र विवाह सम्बन्ध मे जुड जायं परन्तु फिर भी वे अपने इस वैवाहिक जीवन की पवित्रता कायम रक्खे, उसे विलासिता का जीवन न बना डालें। उनका कर्त्तव्य है कि वे माता का धर्म समझें, तथा पुरुषों के पुरुषार्थ को उत्साहित करने वाली बनें

उपसंहार—यह इस सुन्दर पुस्तक का सार है । पहली पुस्तक का सार क़रीब करीब शब्दशः भाषान्तर नहीं है, परन्तु लेखक के भावो का सारांश है । सारी पुस्तक में कहा गया विषय मानो सिमट कर इस महामंत्र में आ जाता है—' मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात् ' और जोन आफ़ आर्क के ज्वलंत दृष्टान्त जैसे उदाहरण हमारे यहां वैधव्य को अखण्ड ब्रह्मचर्य से शोभित करने वाली मीराबाई, झांसी की रानी लक्ष्मी बाई और अहल्या बाई होलकर में और सारे जीवन को कौमार्य—ब्रह्मचर्य से शोभा देने वाली दक्षिण-हिन्द की साध्वियो अव्वै और अंडाल में मिलते रहते हैं ।

(महादेव देसाई)

काम रोग का निवारण

थर्स्टन नामक लेखक की नयी पुस्तक के मुख्य भाग का अनुवाद अन्यत्र दिया जा रहा है। हर एक स्त्री-पुरुष को उसका ध्यान पूर्वक मनन करना चाहिये। १५ वर्ष के बालक से लेकर ५० वर्ष तक के पुरुष मे, और इसी उम्र की, या इससे भी छोटी सी बालिका से लेकर ५० वर्ष तक की स्त्री मे यह कल्पना फैली हुई है कि विषय-भोग के विना रहा ही नहीं जा सकता। इसलिए स्त्री और पुरुष दोनों ही उसके लिये विह्वल रहते हैं। स्त्री को देख कर पुरुष का मन हाथ से जाता रहता है, और पुरुष को देख कर स्त्री की भी वही दशा हो जाती है। इससे कितने ऐसे रिवाज भी पड़ गये है कि जिनसे स्त्री-पुरुष रोगी निर्वल तथा निरुत्साही देखने में आते हैं और हमारा जीवन ऐसा घृणित तथा पतित हो जाता है कि जैसा मनुष्य के लिए उचित नही है। ऐसे वातावरण मे लिखे गए शास्त्र में भी इसी प्रकार की भावनाएं देखने मे आती हैं, जिनके परिणाम-स्वरूप स्त्री-पुरुष को ऐसा व्यवहार करना पड़ता है, मानो वे एक दूसरे के दुश्मन हैं। क्योंकि एक को देख कर दूसरे मे विकार पैदा होता है या होने

का भय उसे रहता है। इस मान्यता के कारण और उसके आधार पर बनाये हुये रिवाजों के कारण या तो विषय-भोग में या उसके विचार में जीवन चला जाता है, या फिर संसार कड़वे जहर के समान हो जाता है।

वास्तविक रीति से मनुष्य में विवेक-बुद्धि होने से उस में पशु की अपेक्षा अधिक त्याग-शक्ति और संयम होना चाहिये किन्तु तो भी हम रोज़ ही यह अनुभव करते हैं कि पशु नर-मादा, मर्यादा का जिस अंश तक पालन करते हैं, उस अंश तक मनुष्य नहीं करता। सामान्य तौर पर स्त्री-पुरुष के बीच माता-पुत्र, बहिन-भाई या पुत्री-पिता के समान सम्बन्ध होना चाहिये। यह तो स्पष्ट ही है कि दम्पति-सम्बन्ध अपवाद रूप में ही हो सकता है। अगर भाई को बहिन से या बहिन को भाई से किसी प्रकार का डर हो सकता है तो प्रत्येक पुरुष को अन्य स्त्री से या प्रत्येक स्त्री को अन्य पुरुष से डर होना चाहिये। इसके विपरीत परिस्थिति यह है कि भाई बहिन के बीच भी संकोच रखा जाता है और रखना सिखलाया जाता है।

इस घृणित स्थिति से अर्थात् विषय-वासना के दुर्गंधित वायु-मण्डल से निकल जाने की पूरी आवश्यकता है। हममें ऐसे वहम ने जड़ जमा ली है कि इस वासना से उबरना असम्भव है। अब ऐसा दृढ़ विश्वास हम में उत्पन्न होना चाहिये कि इस वहम की जड़ ही उड़ा दी जाय; और यह शक्य भी है।

ऐसा पुरुषार्थ करने में थरटन की यह छोटी सी पुस्तक

बहुत मदद देती है। इस पुस्तक के लेखक की यह खोज मुझे तो ठीक जान पड़ती है कि विषय वासना के मूल मे आजकल की विवाह-सबंधी मान्यता और उसके आधार पर रचे गये रिवाज हैं, जो पूर्व-पश्चिम सर्वत्र ही व्याप्त हैं। स्त्री पुरुष का रात को एकान्त में, एक कमरे में और एक बिस्तर पर सोना दोनों के लिये घातक है और विषय वासना को व्यापक और स्थायी करने का प्रचंड उपाय है। जब कि एक ओर से सारा दंपति संसार ऐसा व्यवहार करे और दूसरी ओर से धर्मोपदेशक और सुधारक संयम का उपदेश देवें तो यह आकाश में पैबंद लगाने के समान है। ऐसे वातावरण मे संयम के उपदेश निरर्थक हो तो इस मे आश्चर्य ही क्या है। शास्त्र पुकार-पुकार कर कहते हैं कि विषय-भोग केवल प्रजोत्पत्ति के लिये किया जा सकता है। इस आज्ञा का उल्लंघन क्षण-क्षण में होता है। इस प्रकार विषय-वासना के परिणाम स्वरूप यदि रोग होते हैं तो उनके दूसरे कारण ढूंढ़े जाते हैं। यह तो वैसी ही बात हुई कि बगल मे लड़का और शहर में ढिढोरा। अगर ऐसी स्वयं प्रकाशमान तथा साफ बातें भी समझ ली जायं तो

१—स्त्री पुरुष आज से प्रतिज्ञा करें कि हमें एकान्त में साथ-साथ सोना ही नहीं है बल्कि दोनों की प्रबल इच्छा के बिना प्रजोत्पत्ति का कभी विचार भी नहीं करना है। जहां तक संभव हो दोनों को दो जुदा कमरों में सोना चाहिये।

गरीबी के कारण, जहां यह नितान्त ही असंभव हो वहां स्त्री पुरुष को दूर और अलग अलग बिस्तरों पर बीच मे किसी मित्र या सगे को सुला कर सोना चाहिये।

२—समझदार मां बाप अपनी लड़की को ऐसे घर में देने से साफ इनकार कर देवें, जहां कि लड़की को अलग कमरा और अलग बिस्तर न मिल सके। विवाह एक तरह की मित्रता है। बालकों को ऐसा शिक्षण मिलना चाहिये कि स्त्री पुरुष सुख दुःख के साथी बनते हैं। किन्तु दपति को विवाह होने के बाद पहली ही रात को विषय भोग में पड़ कर जिंदगी बरबाद करने का उपाय नहीं खोदना चाहिये।

थर्स्टन की इस खोज को क़बूल करने के पीछे जो नयी, आश्चर्य कारक, किन्तु कल्याण-कर, तथा शान्ति-प्रद कल्पना छिपी हुई है, उसका मनन करना योग्य है। साथ ही इसके इन्हीं विचारों के अनुसार विवाह-संबधी प्रचलित विचारों में भी फेर-फार होना चाहिये। इस खोज का जिन्होने मनन किया हो वे अगर बाल-बच्चे वाले हो तो उनको लड़कों की तालीम और घर का वातावरण बदलदेना चाहिये।

विषय भोग भोगते हुए भी प्रजोत्पत्ति का निवारण करने के जिन कृत्रिम उपायो का भयंकर प्रचार आजकल हो रहा है, वह हानिकर है। इतनी सी बात समझने के लिये थर्स्टन की साक्षी या उसके समर्थन की जरूरत नहीं।

(नवजीवन)

काम कैसे जीता जाय

काम-विकार जीतने का प्रयत्न करने वाले एक पाठक लिखते हैं;

"आपकी 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्म-कथा' की पुस्तक —भाग पहला—पढ़ी, जिससे ज्यादा अनुभव प्राप्त हुआ। आपने कोई भी बात छुपाई नहीं है, इस कारण मैं भी कोई बात छुपा रखना ठीक नहीं समझता। 'अनीति की राह पर' पुस्तक भी पढ़ी, उससे भी विषयों के जीतने के विशेष उपायों का पता चला। लेकिन विषय-वासना इतनी खराब है कि योग वासिष्ठ, स्वामी रामतीर्थ के ग्रंथ और स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थों को पढ़ते समय तो सब कुछ निःसार मालूम होने लगता है। परन्तु पढ़ना खतम होते ही विषय के घोड़े फिर से चढ दौड़ते हैं। आंख, नाक, कान, जीभ वगैरा वश में रखे जा सकते हैं, क्योंकि आंख बन्द की कि आंख के देखने का विषय आंखों से ओझल हुआ। यही बात दूसरी इन्द्रियों के बारे मे तो कही जा सकती है लेकिन जननेन्द्रिय की तो बात ही दूसरी देख पड़ती है। जब वह सताना शुरू करती है उस

समय तो मानो पढ़े हुये तमाम ग्रन्थों की क़ीमत मिट्टी के मोल की बन जाती है । मैं सात्विक-भोजन करता हूं, एक बार खाता हूँ, रात को केवल दूध पीकर रहता हूँ, तिस पर भी काम विकार किसी तरह दबता नही, नेस्तो-नाबूद होता नहीं । क्यो, कुछ समझ नहीं पड़ता । गीता जी मे भी भगवान श्री कृष्ण जी ने एक जगह कहा है—

विपया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ अ० २ श्लो० ५

यह सच है कि निराहार रहने वाला देह-धारी जीव इन्द्रियों के विषय से निवृत्त होता है, लेकिन वह विषयों की आसक्ति से नहीं छूटता । आसक्ति तो परमात्मा के दर्शन से ही छूटती है ।

सारांश इस तरह ईश्वर का दर्शन हो तभी विषयों की आसक्ति से पिण्ड छूटे । दूसरे शब्दों में न ईश्वर के दर्शन हों और न विषयों से मुक्ति मिले । मैं क्या करूं ? क्या आप मुझ जैसे विपयासक्त को कोई रास्ता नहीं बतायंगे ?

इसमे शक नहीं कि ऐसी कठिनाइयो मे मार्ग बतलाने वाले भी होगे, लेकिन मैं उनसे किस तरह मिल सकता हूँ? क्योकि आज कल भले बुरे साधु की पहचान करना भी कठिन है ।

इसका जवाब 'नवजीवन' के जरिये देंगे तो कोई अच्छा सा रास्ता पकड़ सकूंगा और प्रभु को पाने मे रुकावट डालने वाले विषय जीते जा सकेंगे ।

बहुत पहले से मैं ये सवाल आपसे पूछने की कोशिश में

था। जब आपकी आत्म-कथा पढ़ी तब मुझे मालूम हुआ कि ऐसे प्रश्न पूछना अनुचित नहीं होगा, साथ ही यह भी प्रतीत हुआ कि ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का हाल पूछने मे शरमिन्दा होने की ज़रूरत नहीं है।"

इन पाठकों की भांति और लोगो की भी यही हालत है। काम को जीतना कठिन है, असम्भव या ग़ैर-मुमकिन नहीं। लेकिन प्रभु का कथन है कि जो काम को जीत लेता है, वह ससार जीत लेता है और भवसागर से पार हो जाता है। सारांश यह है कि काम पर जय पाना सब से कठिन बात है। लेकिन काम-विजय की कोशिश करने वाले बहुत से लोग यह स्वीकार नहीं करते कि ऐसी कठिन चीज़ को पाने के लिये धीरज की सख्त ज़रूरत रहती है। हम जानते हैं कि वर्णमाला का परिचय प्राप्त करने, अक्षर ज्ञान पाने के लिए लगन, धीरज और ध्यान की कितनी आवश्यकता पड़ती है। उस पर से अगर हम त्रैराशिक का हिसाब लगा कर देखें तो हमे पता चले कि अक्षर ज्ञान के अभ्यास में धीरज वगैरह की जितनी आवश्यकता होती है, काम विजय के लिये उससे अनन्त गुना अधिक धैर्य की आवश्यकता होती है।

यह तो धीरज की बात हुई। काम-विजय के अनेक उपचारों के बारे मे भी हम उतने ही उदासीन-बेफ़िक्र रहते हैं। साधारण बीमारी को दूर करने के लिए दुनियां भर की धूल छान डालते हैं; डाक्टरों के घर जाते हैं; जन्तर-मन्तर तक नहीं

छोड़ते, लेकिन काम-रूप महारोग को मिटाने के लिए जितने चाहिए उतने उपचार हम नहीं करते। कुछेक उपचार करके ही थक जाते हैं और उलटे ईश्वर अथवा इलाज बताने वाले के साथ शर्त्त करते हैं कि इतनी चीज़ तो नहीं ही छोड़ेंगे, फिर भी काम-विकार को मिटाना होगा। तात्पर्य यह है कि काम-विकार को नष्ट करने की सच्ची विकलता हमें नहीं होती। उसके लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए हम तैयार नहीं होते। हमारी यह शिथिलता काम-विकार को जीतने के मार्ग मे एक बड़ी से बड़ी रुकावट है। यह सच है कि निराहारी के विकार दबते हैं, लेकिन आत्म-दर्शन के बिना आसक्ति का नाश नहीं होता। लेकिन उक्त श्लोक का अर्थ यह नही है कि कामविजय के लिए निराहार बेकाम है। उसका अर्थ यह है कि निराहार रहते रहते थकना ही नहीं हो सकता है कि इस तरह की दृढता और लग्न से आत्म-दर्शन हो जायं साथ ही आसक्ति भी मिट जायगी। इस तरह का अनशन किसी दूसरे के कहने से नहीं किया जा सकता, न आडम्बर-बाहरी दिखावट के खातिर ही मजूर किया जा सकता है; इसके लिए मन वचन और शरीर का संयोग ज़रूरी है। अगर यह सहयोग सध जाय तो ईश्वर की प्रसादी अवश्य ही मिले और प्रसादी मिले तो विकार को शांति तो मिली ही है।

लेकिन निराहार-व्रत से पहले के कई हलके उपाय भी हैं। उनसे काम लेने से अगर विकार शान्त न हो तो कम से

कम क़मज़ोर तो ज़रूर ही होंगें। अतः भोग विलास के सारे अवसरों का नितान्त त्याग करना चाहिए। उनके प्रति अभाव बुद्धि जागृत करनी चाहिए। क्योंकि अभाव-विहीन त्याग सिर्फ बाहरी त्याग होगा और इस कारण चिरस्थायी नहीं हो सकेगा। यहां यह बताने को ज़रूरत तो नहीं होनी चाहिये कि भोग-विलास किसे कहा जाय। जिन चीज़ों से विकार पैदा हों उनका त्याग करना चाहिये।

इस सिलसिले मे आहार-भोजन का सवाल भी बहुत विचारणीय है। अभी यह क्षेत्र अछूता पड़ा है। मेरे विचार मे विकारो को शान्त करने की इच्छा रखने वालों को घी दूध का कुछ न कुछ उपयोग करना चाहिये। वनपक्व अनाज खाकर अगर जीवन-निर्वाह किया जा सके तो कृत्रिम अग्नि के संसर्ग से तैयार की गई खूराक न ले अथवा बहुत थोड़ी ले। फल और बहुत सी हरी भाजी जो बिना रांधे भी खाई जा सकती है, खानी चाहिए। लेकिन कच्ची हरी भाजी की खूराक का प्रमाण बहुत थोड़ा रखना चाहिए। दो-तीन तोला कच्ची हरी भाजी से काफी पोषण मिल जाता है। मिठाई, मसालों वगैरा का एकदम त्याग करना चाहिए। इतना बता चुकने पर भी मैं जानता हूँ कि सिर्फ खुराक से ही ब्रह्मचर्य की पूरी रक्षा नहीं हो सकती। लेकिन विकारोत्तेजक खुराक खाते हुए भी मनुष्य ब्रह्मचर्य पालन की आशा न रक्खे।

(नवजीवन)

प्राण-शक्ति का सञ्चय

नाज़ुक समस्याओं पर प्रकट रूप से विचार करने के लिए, पाठकगण मुझे क्षमा करें। केवल एकान्त मे ही इन पर बातचीत करने में मुझे खुशी होती। परन्तु जिस साहित्य का मुझे अध्ययन करना पड़ा है और महाशय ब्यूरो की पुस्तक की आलोचना पर मेरे पास जो अनेक पत्र आये हैं, उनके कारण समाज के लिए इस महत्व-पूर्ण प्रश्न पर प्रकट रूप से विचार करना आवश्यक हो गया है। एक मलाबारी भाई लिखते हैं—

"आप महाशय ब्यूरो की पुस्तक की अपनी समालोचना में लिखते हैं कि ऐसा एक भी उदाहरण नही मिलता है कि ब्रह्मचर्य्य-पालन वा दीर्घ काल के सयम से किसी को कुछ हानि पहुँचती हो। खैर, मुझे अपने लिए तो तीन सप्ताह से अधिक दिनो तक संयम रखना हानिकारक ही मालूम होता है, इतने समय के बाद प्राय: मेरे शरीर मे भारीपन का तथा चित्त और अङ्ग में बेचैनी का अनुभव होने लगता है जिससे मन भी चिड़चिड़ा सा हो जाता है। आराम तभी मिलता है जब संयोग द्वारा या प्रकृति की कृपा होने से योंही कुछ वीर्य-पात हो लेता

है। दूसरे दिन सुबह शरीर वा मन की कमजोरी का अनुभव करने के बदले मैं शान्त और हलका हो जाता हूं और अपने काम में अधिक उत्साह से लगता हूं।

मेरे एक मित्र को तो संयम हानिकारक ही सिद्ध हुआ। उनकी उम्र कोई ३२ साल की होगी। वे बड़े कट्टर शाकाहारी और धर्मिष्ठ पुरुष है। शरीर और मन से वे प्रत्येक दुष्ट आदत से मुक्त हैं। किन्तु तो भी, दो साल पहले तक उन्हें स्वप्न-दोष मे बहुत वीर्य-पात हो जाया करता था जिसके बाद उन्हें बहुत कमजोरी और उत्साह-हीनता होती थी। उसी समय उन्होने विवाह किया। पेड़ू के दर्द की भी एक बीमारी उन्हे उसी समय हो गयी। एक आयुर्वेदिक वैद्य को सलाह से उन्होंने विवाह कर लिया, और अब वे बिलकुल अच्छे हैं।

ब्रह्मचर्य्य की श्रेष्ठता का, जिसपर हमारे सभी शास्त्र एक मत हैं, मैं बुद्धि से कायल हूं, किन्तु जिन अनुभवों का मैंने ऊपर वर्णन किया है उनसे तो स्पष्ट हो जाता है कि शुक्र-ग्रन्थियों से जो वीर्य निकलता है उसे शरीर मे पचा लेने की हममें ताक़त नहीं है, इसलिए वह जहर सा बन जाता है। अतएव, मैं आप से सविनय अनुरोध करता हूॅ कि मेरे ऐसे लोगों के लाभ के लिए जिन्हे ब्रह्मचर्य्य और आत्म-संयम के महत्व के विषय मे कुछ सन्देह नही है, यङ्ग-इण्डिया में हठ योग वा प्राणायाम के कुछ साधन बतलाइये, जिनके सहारे हम अपने शरीर मे इस प्राण-शक्ति को पचा सकें।"

इन भाइयो के अनुभव साधारण नहीं हैं, बल्कि बहुतों के ऐसे ही अनुभवो के नमूने मात्र हैं। ऐसे उदाहरण मैं जानता हूं जब कि अपूर्ण आधार के बल पर साधारण नियम निकालने मे जल्दबाजी की गयी है। इस प्राण-शक्ति को शरीर मे ही पचा रखने और फिर पचा लेने की योग्यता बहुत अभ्यास से आती है। ऐसा तो होना भी चाहिये, क्योकि किसी भी दूसरे काम से शरीर और मन को इतनी शक्ति नहीं प्राप्त होती है। दवाये, और यन्त्र, शरीर को साधारणतया अच्छी दशा में रख सकते हैं, माना। किन्तु उनसे चित्त इतना निर्बल पड़ जाता है कि वह मनो-विकारो का विरोध नही कर सकता और ये मनो-विकार जानी दुश्मन के समान हर किसी को घेरे रहते हैं।

हम काम तो ऐसे करते है जिनसे लाभ तो दूर, उलटे हानि ही होनी चाहिये, परन्तु साधारण संयम से ही बहुत लाभ की आशा बारंबार किया करते हैं। हमारी साधारण जीवन-पद्धति विकारों को सन्तोष देने लायक बनायी जाती है; हमारा भोजन, साहित्य, मनोरञ्जन, काम का समय, ये सभी कुछ हमारे पाशविक विकारो को ही उत्तेजना देने और सन्तुष्ट करने के लिए निश्चित किये जाते हैं। हममे से अधिकांश की इच्छा विवाह करने, लड़के पैदा करने; भले ही थोड़े सयत रूप मे हो, किन्तु साधारणतः सुख भोगने की ही होती है और अखीर तक कमोबेश ऐसा होता ही रहेगा।

किन्तु साधारण नियम के अपवाद जैसे हमेशा से होते आये

हैं वैसे अब भी होते हैं। ऐसे भी मनुष्य हुये हैं जिन्होंने मानव जाति की सेवा मे या यों कहो कि भगवान् की ही सेवा में जीवन लगा देना चाहा है। वे वसुधा-कुटुम्ब की और निजी कुटुम्ब की सेवा मे अपना समय अलग अलग बांटना नहीं चाहते। यह तो ठीक ही है कि ऐसे मनुष्यो के लिये उस प्रकार रहना सम्भव नहीं है कि जिस जीवन से खास किसी व्यक्ति विशेष की ही उन्नति सम्भव है। जो भगवान् की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य्य-व्रत लेंगे, उन पुरुषों को जीवन की ढिलाइयों को छोड़ देना पड़ेगा और इस कठोर सयम मे ही सुख का अनुभव करना होगा। दुनिया मे वे भले ही रहें, परन्तु वे दुनियाबी नहीं हो सकते। उनका भोजन, धन्धा, काम करने का समय, मनोरञ्जन, साहित्यिक-जीवन का उद्देश्य आदि सर्व साधारण से अवश्य ही भिन्न होंगे।

अब इस पर विचार करना चाहिये कि पत्र-लेखक और उनके मित्र ने संपूर्ण-ब्रह्मचर्य पालन को क्या अपना ध्येय बनाया था और अपने जीवन को क्या उसी ढांचे में ढाला भी था। यदि उन्होने ऐसा नही किया था, तो फिर यह समझने मे कुछ कठिनाई नहीं होगी कि वीर्य्य-पात से पहले आदमी को आराम क्यों कर मिलता था और दूसरे को निर्बलता क्यों होती थी। उस दूसरे आदमी के लिये विवाह ही दवा थी। अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जब मन में केवल विवाह-सुख का ही विचार भरा हो तो उस स्थिति मे अधिकांश मनुष्यो के

लिए विवाह ही प्राकृत दशा और इष्ट है। जो विचार दबाये न जाने पर भी अपूर्त्त ही छोड़ दिया जाता है उसकी शक्ति, वैसे ही विचार की अपेक्षा जिनको हम पूर्त्त कर लेते हैं, यानी जिसका अमल कर लेते हैं, कहीं अधिक होती है। जब उस क्रिया का हम यथोचित संयम कर लेते हैं तो, उसका प्रभाव विचार पर भी फिर पड़ता है और विचार का संयम भी होता है। इस प्रकार जिस विचार पर अमल कर लिया, वह कैदी सा बन जाता है और काबू में आ जाता है। इस दृष्टि से विवाह भी एक प्रकार का संयम ही मालूम होता है।

मेरे लिए एक अखबारू लेख में उन लोगो के लाभ के लिये जो नियमित सयत जीवन बिताना चाहते हैं, ब्योरेबार सलाह देनी ठीक न होगी। उन्हे तो मै कई वर्ष हुये इसी उद्देश्य से लिखे हुये अपने ग्रन्थ "आरोग्य-विज्ञान" को पढ़ने की सलाह दूंगा। नये अनुभवो के अनुसार इसे कहीं कहीं दुहराने की जरूरत है सही, किन्तु इसमे एक भी ऐसी बात नही है, जिसे मै लौटना चाहूँ। हां साधारण नियम यहां भलेही दिये जा सकते हैं।

(१) खाने में हमेशा संयम से काम लेना। थोड़ी मीठी भूख रहते ही चौके से उठ जाना।

(२) बहुत गर्म मसालो से बने हुये और घी तेल से भरे हुये शाकाहार से अवश्य बचना चाहिये। जब पूरा दूध मिलता हो तो स्नेह (घी, तेल, आदि चिकने पदार्थ) अलग से

खाना बिलकुल अनावश्यक है।

(३) शुद्ध काम में हमेशा मन और शरीर को लगाये रहना।

(४) सबेरे सो जाना और सबेरे उठ बैठना परमावश्यक है।

(५) सब से बड़ी बात तो यह है कि संयत-जीवन बिताने में ही ईश्वर-प्राप्ति की उत्कट जीवन्त अभिलाषा मिली रहती है। जब इस परम तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है तब से ईश्वर के ऊपर यह भरोसा बराबर बढ़ता ही जाता है कि वे स्वयम् ही अपने इस यंत्र को (मनुष्य के शरीर को) विशुद्ध और चालू रखेंगे। गीता में कहा निम्न श्लोक अक्षरशः सत्य है—

"विषया विनिर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्ज्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते॥"

पत्र लेखक आसन और प्राणायाम की बात करते है। मेरा विश्वास है कि आत्म-सयम मे उनका महत्व-पूर्ण स्थान है। परन्तु मुझे खेद है कि इस विषय मे मेरे निजी अनुभव, कुछ ऐसे नहीं है जो लिखने लायक हों। जहां तक मुझे मालूम है इस विषय पर इस ज़माने के अनुभव के आधार पर लिखा हुआ साहित्य है ही नहीं। परन्तु यह विषय अध्ययन करने योग्य है लेकिन मैं अपने अनभिज्ञ पाठकों को इसके प्रयोग करने या जो कोई हठयोगी मिल जाय उसी को गुरू मान लेने से सावधान कर देना चाहता हूँ। उन्हे जान लेना चाहिये कि सयत और धार्मिक जीवन मे अभीष्ट संयम के पालन की काफी शक्ति है।

(यं० इं०)

संयम का नियम

डाक्टर कोवन की किताब Science of a new life मे से कुछ उपयुक्त अश एक मित्र ने भेजे हैं। मैंने किताब नहीं पढ़ी है, मगर उस अश मे दी गई सलाह जरूर ठीक है। मैंने उसमे से भोजन के बारे मे कुछ शब्द निकाल दिये हैं, जो हिन्दोस्तानी पाठकों के लिये बहुत से काम के नहीं थे। शुद्ध, पवित्र, सयत-जीवन बिताने की इच्छा रखने वाले यह न सोचें कि चूंकि इसका इष्ट फल तुरन्त ही नही मिल जाता, इसलिये इसका प्रयत्न करना ही फिजूल है। और कोई दीर्घ काल के सफल ब्रह्मचर्य्य के बाद भी शारीरिक पूर्णता की आशा न रक्खें। ब्रह्मचर्य के लिये हम प्रयत्न-शील लोगों में से अधिकांश आदमियो को तीन कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। अपने माता पिताओं से हमे निर्बल मन और तन की विरासत मिली है और ग़लत तरीके के रहन सहन से हमने अपने शरीर और संकल्प को निर्बल कर दिया है। जब पवित्रता का समर्थक कोई लेख हमारे मन पर चढ़ता है, तो हम सुधार शुरू करते हैं। ऐसा सुधार शुरू करने का समय कभी हाथ से गया हुआ नहीं समझना चाहिये। मगर

इन लेखों मे वर्णित लाभों की हमें उम्मेद नहीं रखनी चाहिये, क्योंकि ये लाभ तो उसी को होंगे जिसने बचपन से संयत जीवन बिताया होगा। और तीसरी कठनाई जो पड़ती है वह यह है कि सभी प्रकार के कृत्रिम और बाहरी संयम के रहते हुए भी, हम अपना संयम करने, अपने विचारो को काबू मे रखने में असमर्थ होते हैं। और पवित्र जीवन के सभी इच्छुक मुझसे यह बात सुन लेवें कि कभी कभी बुरा विचार भी शरीर को उतना ही नष्ट करता है जितना कि बुरे काम। विचारो के ऊपर काबू करना बहुत दिनों के अभ्यास के कष्ट और परिश्रम के बाद ही आता है। मगर मेरा पक्का विश्वास है, कि उस महान् फल की प्राप्ति के लिये कितना ही वक्त, कोई मिहनत, कोई कष्ट अधिक नहीं कहा जायगा। विचारो की पवित्रता तो तभी आ सकती है, जब प्रत्यक्ष अनुभव जैसा ईश्वर में विश्वास हो।

"स्वर्ग में पवित्रता की इतनी क़द्र है कि जब कोई सच्चा पवित्रात्मा पहुँचता है तो उसकी सेवा को हज़ारो देवदूत दौड़ते है।"

"ब्रह्मचर्य का अर्थ है, स्वेच्छा पूर्वक, किसी तरह का विषयानन्द बिलकुल न करना, और उसकी शक्ति को जान बूझ कर उस पर पूरा कब्ज़ा रखना। आदमी का जीवन पवित्र और सकल्प सबल न हो तो वह इन भोगो मे पड़ ही नहीं जाता, बल्कि जरूर पड़ेगा ही।

"पूर्ण ब्रह्मचर्य से ये लाभ होते हैं; स्नायु-मण्डल पवित्र होता

है और सबल बनता है। विशेष इन्द्रियां—जैसे कि दृष्टि और श्रवण-शक्ति-सम्पन्न और तेज़ होती हैं; मेदा ठीक ठीक काम करता है, और आदमी बीमारी का तो नाम ही नही जानता। शरीर भरा पूरा होकर जहां-तहां की हड्डियां छिप जाती हैं। आदमी आयु तो पूरी भोगता है; मगर बुढ़ापा नहीं आता, क्योंकि आखिर के दिनो में तो लड़कपन की तरह देह और दिमाग़ ठीक और तन्दुरुस्त रहते हैं। बुद्धि की वृद्धि होकर वह परिपक्व होती है, याददाश्त बढ़ती है, देखने समझने और सोचने की शक्ति बढ़ती है; नई योजनाए, सोचने और काम में लाने की योग्यता, शान्ति और आत्म-निर्भरता, सहन-शक्ति और मृदुता, साहस, उदारता और चरित्र-महत्ता में भी वृद्धि होती है, नैतिक भाव ऊंचे उठते हैं, प्रेम बढ़ता और परिपक्व होता है, और आत्मा ऊंचे उठते उठते परमात्मा में लीन हो जाती है। पूरी उम्र तक उत्पादन-शक्ति जैसी की तैसी बनी रहती है। उसकी जीवनोत्पादन शक्ति में कुछ भी कमी नहीं होती।

जीवन का नियम—जो इस प्रकार के ब्रह्मचारियों की गौरव-शालिनी सेना मे भर्ती होना चाहते हैं, उन्हें अपने मन की कई मूर्त्तियो को तोड़ना पड़ेगा। उद्देश्य ऊचा है और बीच में उनकी कितनी ही कड़वी और कठिन परिक्षायें होंगी किन्तु विजय होगी निश्चयता, पौरुष और साहस की ही और तब ही जाकर वे ब्रह्मचर्य का महान् फल भोग सकेंगे।

"जो आदमी सच्चे मन से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे कोई सलाह, कोई उपदेश, जिससे उसके उद्देश्य में जरा सी भी सहायता मिलती हो, छोटा समझ कर छोड़ना नहीं चाहिए। जो आदमी इसके अनुसार चलेगा, वह चाहे जितना बड़ा विषयी क्यों न हो और उसे बहुत ही अधिक शारीरिक और मानसिक मुसीबतें भले ही उठानी पड़े, मगर वह जल्द ही इसे प्राप्त कर सकेगा। अचल श्रद्धा और निरन्तर प्रयत्न से सुख का फल जरूर मिलेगा।

"जो ब्रह्मचर्य का पवित्र जीवन बिताना चाहते हैं, उन्हे वे चीजें छोड़नी पड़ेंगी; हर तरह की तम्बाकू, सभी तरह की शराबें, चाय, कहवा, बहुत देर मे खाना या अधिक खाना, मिठाइयां, चीनी, गुड़ वगैरह, मिर्च, सरसो, मसाला, सिरके और तरह तरह के अचार, चटनियां, अधिक नमक, और सभी तरह के कुटे हुये और पिसे हुये मांस और दूसरी तामसिक चीजे।

"सभी तरह के तंग कपड़े, बहुत कोमल गद्दे, भारी रज़ाइयां, ऐसे कमरे जिनमे रोशनी और हवा का गुजर न हो, सबेरे नींद खुलने के बाद भी बिस्तर पर पड़े रहना, शरीर की गंदगी, टर्किश और रशियन स्नान।

"मन और शरीर का आलस्य, बेकारी, बुरे या संदिग्ध स्वभाव के साथी, अनिश्चय-शील मन।

दवाइयां और नीम हकीम—"ऊपर की सूची में कितनी ऐसी चीजे हैं, जिन्हें छोड़ने के पहले लोग बरावर सोचेंगे। मगर जो सच्चा जीवन बिताना चाहता है, उसे इनमें से एक एक कर

के सभी चीजे छोड़नी होंगी । ऊपर की बताई हुई चीजों में एक भी ऐसी नहीं है, जो शरीर और आत्मा के पोषण या वृद्धि के लिये जरा भी आवश्यक हो । मैं जोर देकर कहता हूँ, इसके विरोध किये जाने का मुझे कुछ भी भय नहीं है कि आदमी ऊपर की बतलायी चीजो को या कुछ को ही छोड़े विना स्वस्थ, पवित्र ब्रह्मचारी का जीवन नहीं बिता सकता, धर्म-भीरु पुरुष नहीं बन सकता ।

"ऊपर की गिनायी गई चीजें आपको छोड़नी ही पड़ेंगी। अगर आप रोगी, असन्तुष्ट विषयी और अल्पायु जीवन नही चाहते, अगर आप को स्वस्थ ब्रह्मचारी के जीवन का आनन्द प्राप्त करना और दीर्घायु-जीवन बिताना है तो आप नीचे की चीजें खूब वर्तिए, इनसे खूब आनन्द उठाइए, दृढ़ और निश्चय-शील मन पाइए और रोज सांझ सबेरे धार्मिक विचारो मे गोता लगाइये ।

"इन नियमों का सही-सही, श्रद्धा से पालन करने वाले को सम्पूर्ण स्वास्थ्य, शरीर की पवित्रता, आत्मा की उच्चता, और सबसे बड़ी बात, ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के लिये सभी आवश्यक साधन प्राप्त रहेंगे । इन नियमों का सही सही पालन करने वाली स्त्री को सौन्दर्य-सुख, सुन्दर स्वास्थ्य और चरित्र का सौन्दर्य—मिलेगा और चिरकाल तक वैसा ही बना रहेगा । शरीर, मन और आत्मा की शक्ति वह देवी पायेगी, उसे स्थिर रक्खेगी मगर सब से, बड़ी बात तो यह है कि वह पवित्र प्रेममयी और सती होगी।"

पति-धर्म

एक मित्र लिखते हैं—

"मेरे एक मित्र हैं, वे अपनी स्त्री पर बहुधा इसलिये नाराज रहा करते हैं, कि वह अच्छा और यथेच्छ भोजन बनाकर नहीं देती और घर मे ठीक-ठीक सफाई भी नहीं रख सकती। उनका कहना है कि यदि बार-बार कहने पर भी स्त्री ये काम ठीक-ठीक नहीं करती तो उसे उनके कमाये हुये रुपये पैसे का उपभोग करने का कोई हक नहीं है, उसे चाहिये कि वह खुद मिहनत कर के कमाई करे और अपना निर्वाह करे। उनका यह भी कहना है कि यदि वह उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करके दूसरा पति करना चाहे तो कर सकती है। इस पर से दो प्रश्न उठते हैं—

१—पति के कमाये हुये धन पर स्त्री का कितना अधिकार है ?

२—साधारण-सी असुविधाओ के कारण, खर्च के भार से मुक्त होने के लिये पत्नी को बिलकुल छोड़ देने की इच्छा करना कहां तक उचित है ?

आशा है, आप इनका उत्तर "हिन्दी नवजीवन" द्वारा देने की कृपा करेंगे।"

पति-वर्ग स्त्रियों को पत्नी-धर्म का उपदेश देने के लिए सदा उत्सुक रहता है, और पत्नियों से यहाँ तक कहा जाता है कि वे अपने को पति की मिल्कियत समझें।

पति तो मानता ही है कि उसे पुरुष के नाते जो अधिकार अपने घर-बार, जमीन-जायदाद और पशु इत्यादि पर प्राप्त हैं, ठीक वही अधिकार उसे पत्नी पर भी प्राप्त हैं। इस बात के समर्थन में रामायण जैसे ग्रन्थ का भी अवलम्बन लिया जाता है,

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताडन के अधिकारी॥

रामायण की इस पंक्ति का आधार लेकर समाज में पत्नी दण्डनीय ठहराई जाती है, उसे दण्ड दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यह दोहा गो० तुलसीदास जी का नहीं है। यदि है भी तो कह सकते हैं कि इन शब्दों में तुलसीदास जी ने अपना अभिप्राय नहीं प्रगट किया है, बल्कि अपने समय में प्रचलित रूढ़ि का निर्णय किया है। यह भी असम्भव नहीं है कि इस बारे में सहज स्वभाव-वश उन्होंने उस समय की प्रथा का विचार किये बिना ही अपनी सम्मति दे दी हो। रामायण भक्ति-निरूपण का ग्रन्थ है, गोस्वामी तुलसीदास जी ने सुधारक की दृष्टि से रामायण नहीं लिखी है।

यही कारण है कि उन्होंने रामायण में अपने जमाने की बातों का प्रकृत चित्र खींचा है, सहज-स्वभाव से उनका वर्णन किया है; इस वर्णन के संक्षेप में होने पर भी रामायण जैसे अद्वितीय ग्रन्थ का महत्व कम नहीं होता। जैसे रामचरित्र-मानस मे भूगोल की शुद्धता की आशा नहीं की जा सकती, ठीक उसी तरह हम अपने वर्त्तमान युग के नए विचारों के प्रतिपादन की आशा भी उस ग्रन्थ से न करे। परन्तु यह तो विषयान्तर हुआ। गोस्वामी महाराज ने स्त्रियो के बारे मे कुछ ही क्यों न माना हो किन्तु इसमे सन्देह नहीं कि जो मनुष्य स्त्री को पशु-तुल्य समझता है, उसे अपनी मिल्कियत मानता है, वह अपने अर्द्धाङ्ग को विच्छेद करता है।

पति का धर्म है कि पत्नी को अपनी सच्ची सहधर्मिणी और अर्द्धाङ्गिनी माने, उसके दुःख से दुःखी हो, और उसके सुख से सुखी। पत्नी पति की दासी कदापि नहीं है, न वह पति के भोग की सामिग्री ही है। जो स्वतन्त्रता पति अपने लिए चाहता है, ठीक वही स्वतन्त्रता पत्नी को भी होनी चाहिये। जिस सभ्यता मे स्त्री-जाति का सम्मान नही किया जाता उस सभ्यता का नाश निश्चित ही है। संसार न अकेले पुरुष से चल सकता है, न अकेली स्त्री से, इसके लिये तो एक दूसरे का सहयोग आवश्यक है। स्त्री अगर कोप करे तो आज पुरुष-वर्ग का नाश कर सकती है। यही कारण है कि वह महा-शक्ति मानी गई है।

हिन्दू सभ्यता मे तो स्त्री का इतना सम्मान किया गया है कि प्राचीन काल में स्त्री का नाम प्रथम पद मे रहता था, उदाहरणार्थ हम 'सीताराम' कहते है, 'राम सीता' कदापि नहीं। विष्णु का 'लक्ष्मीपति' नाम प्रसिद्ध है ही। महादेव को हम पार्वती-पति के नाम से पूजते हैं; महाभारतकार ने द्रौपदी को और आदि कवि वाल्मीकि ने सीता जी को गौरव पूर्ण स्थान दिया ही है, हम प्रातःकाल सतियो का नाम लेकर पवित्र होते है। जो सभ्यता इतनी उच्च है, उसमे स्त्रियो का दर्जा पशु या मिल्कियत के समान कदापि हो नहीं सकता।

अब जो प्रश्न पूछे गये हैं, उनका उत्तर देना सहज है। मेरा दृढ विश्वास है कि पति के कमाये हुए धन पर स्त्री का पूरा अधिकार है और पत्नी पति की मिल्कियत की अविभाज्य भागीदार है।

पत्नी की रक्षा करना और अपनी हैसियत के मुताबिक उसके भरण-पोषण और वस्त्रादि का प्रबन्ध करना पति का प्रावश्यक धर्म है।

दिङ्-मूढ़ पति

एक दिङ्-मूढ़ पति लिखते हैं—

"मेरी पत्नी मामूली समझ वाली है। वह मुझे समझ नहीं सकती; वह अज्ञान-अन्तरज्ञान मे नहीं, लेकिन समझ मे है—इस कारण उस पर मुझे दया आती है कई अवसरों पर वह मुझसे रूठ जाती है, ठीक बात समझाने पर भी नही समझती। आपका नाम और उदाहरण देकर मैं जब ब्रह्मचर्य की बात करता हूँ, तो उसे अचरज होता है, वह इस प्रकार की बातो से नफ़रत करती है। झूठे वहम, माता देवी, देवता, और महा-राजो-गुसाइयो में उसे आस्था है; जब कहता हूँ कि यह सब ढोंग है, तो लगातार बारह घण्टों तक मुंह फुलाये रहती है, और बर्ताव में रूखा-पन साफ दिखाई पड़ने लगता है। कई बार यही अथवा कुछ कम या ज्यादा इसी तरह की बाते हुआ करती हैं। इन पंक्तियों के लिखते समय भी श्रीमती की यही हालत है। कल जन्माष्टमी थी, इसलिए वह मंदिर गईं। मैंने वहाँ जाने से पहले ही कहा कि जाना निरर्थक है। फिर भी साथ था, इसलिये वह चली गईं। आने पर पूछा तो

स्त्री-स्वभाव के अनुसार गुस्सा हो आया और अब मुखार-विन्द मलीन हो गया। अकसर यही होता है। फिर भी यह सोचकर कि अज्ञान है, मैं टाल जाता हूं। अगर यही रफ़्तार जीवन पर्यन्त रही तो ससार में शान्ति-जैसी क्या कोई चीज मिलेगी ?

मुझे तो कवि का यह कथन अक्षरशः सच मालूम पड़ता है कि, 'सब तरह जांचते हुए सार संसार में न देखा।' ऐसे समय उसे हमेशा के लिए परित्याग करने का विचार दृढ़ हो जाता है। लेकिन विचार को अमल मे लाने से पहले मेरे और उसके भावी जीवन के विचार आने लगते है; उस ओर नजर जाती है और दीख क्या पड़ता है ? सिर्फ अंधकार, असतोष, निराशा और दुःख । फिर भी मैं तो इसे अपनी कमज़ोरी ही समझता हूं कि मैंने उसे अब तक भी नही त्यागा।

मैं इस संकट से किस प्रकार छूटूं ? आप कहेंगे ' विधा से मोती , अब पहने रहो। लेकिन तो भी जीवन की कटुता तो बनी ही रहेगी। सम्बन्धियों ने जबर्दस्ती व्याह दिया और मैंने उसे क़बूल कर लिया, उसी का फल अब मुझे भोगना पड रहा है ? मेरी मूर्खता से इस तरह लाभ उठा कर जिन्होंने दूसरों को सदा के लिए दुःख मे डूबो दिया है, उन क्रूरों को इस बात का आज भी अनुभव क्यों नहीं होता ? इन घातक नियमो ने कोमल कलियो का—युवको का— जीवन किस तरह मटिया-मेट किया है, उसकी कल्पना आप के लिए तो मुश्किल नहीं है। अगर समाज अब भी नही जागा तो आने वाली

सन्तान का क्या होगा ? इस बारे में आप क्या सलाह देते हैं ? यह सवाल मेरे अकेले का ही नहीं है; मैंने ऐसे अनेक युवकों को देखा है, बेचारे दुःख के दलदल मे सड़ रहे हैं ? अतः क्या आप अपनी आवाज़ बुलन्द करके उनकी मदद को नहीं दौड़ेंगे ? मैं हाथ जोड़ कर आप से प्रार्थना करता हूँ कि इस दुःख में आप ज़रूर आश्वासन दीजियेगा, ढाढस बधाइयेगा। मेरे प्रश्नो से अगर आप के दिल को चोट पहुँचे तो क्या आप इस बालक को क्षमा नहीं करेंगे ?"

मैं आश्वासन देता तो ज़रूर हूं लेकिन ऐसे संकट के समय अगर मनुष्य खुद आश्वासन न पा सके तो दूसरे शायद ही उसे ढाढस बंधा सकते है। हां आदमी बहुत कुछ आश्वासन बुद्धियों के संघर्षण से भी पासकता है। इसलिए इस नवयुवक पति की दिङ् मूढ़ता का हम थोड़ा पृथक्करण कर देखें। मालूम होता है कि पति के मन मे स्वामित्त्व की सत्ता आज़माने की इच्छा काम कर रही है। अगर यह बात नहीं और पति-पत्नी को मित्रवत् मानते हों, तो निराशा का कोई कारण नहीं रह जाता, मित्र को हम धीरज के साथ समझते हैं, उसके न मानने पर निराश नहीं होते, बलात्कार-जबर्दस्ती नहीं करते। अगर पति को पत्नी से कुछ आशा रखने का अधिकार है, तो पत्नी को भी कुछ न कुछ होना चाहिये। देव-दर्शन को जाने वाली अनेक पत्नियों को आजकल के सुधारक पतियों की धुन

जब पसंद न आती होगी तो वे बेचारियाँ क्या करती होंगी ? वे इन पति को समझाने की हिम्मत तक न करती होंगी ; इसलिए इन पति को और इनके समान दूसरों को मैं पहली सलाह तो यह देता हूँ कि वे समझ बूझ कर अपने स्वामीपन का अधिकार जमाना छोड़ दें।

पत्नी की सेवा करते समय और शिक्षा के लिये शिक्षा देते समय वे अपने विकारों को भी वश में रक्खें; और फिर धैर्य के साथ उन्हें यह समझावें कि झूठे वहम, गुसाइयों पर की आस्था, नाम धारी मन्दिरों में भटकना वगैरा फजूल है और हानिकर भी हो सकते हैं। अगर पति के प्रति शुद्ध प्रेम होगा तो पत्नी ज़रूर समझेगी, इस बारे में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। जल्दी में आम नहीं पकते। जब आम जैसे वृक्ष के लिये वर्षों की साल-सम्भाल जरूरी है, तो जो स्त्री-रूपी वृक्ष ज्ञान हीन रक्खा गया है, उसकी परवरिश में कितनी और कैसी कोमलता पूर्ण साल-सभाल आवश्यक होगी ? मेरा अपना अनुभव तो यह है कि इस तरह रोज-रोज सींचने में ही सन्तोष और सफलता है। एक बार कहने पर अगर बात गले न उतरे तो निराश होकर प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिये उलटे यह विश्वास रखना चाहिए कि रोज-रोज इसी तरह की सिंचाई करने से आखिर हृदय पिघलेगा। इस कारण मैं न तो जो हो चुका है, उसे निभाने की सलाह दे सकता हूँ, और न त्यागने की ही।

इस तरह सम्बन्ध जोड़ कर माता-पिता ने जो भूल की है, उसे ऊपर बताये तरीके से सुधार लेने मे ही पुरुषार्थ है। पत्नी को धोखा देकर त्याग देना और उसमे सुख मानना आसान है; लेकिन यह सच्चा सुख नहीं है, पुरुषार्थ नहीं है और इसी कारण धर्म भी नही है। जिन्हें अपने देश को कगाली हालत का ख़याल है, वे देश को छोड़ नहीं देते, लेकिन उसकी कंगाली को मिटाने का मरते दम तक प्रयत्न करते है; अनेक कष्ट सहते है, और उसी मे सुख मानते हैं। अगर हम यह बात समझ जांय तो पत्नी के प्रति भी इसी तरह का बर्ताव रक्खे। क्योंकि जो असुविधा और कष्ट इन दिङ्मूढ़ पति को है, वही दूसरों को भी है, यह बात वह खुद क़बूल करते है। अगर ऐसे सब पति अपनी पत्नियो को छोड़ दें, तो देश की इतनी सारी स्त्रियो की क्या दशा हो ? पति अगर न सभाले—रक्षा न करे तो कौन करे ?

आज पति और पत्नी के बीच जो असंगति—जो फर्क देख पड़ता है, सो भी देश की मौजूदा गिरी हुई हालत की एक निशानी है, यह सोच कर ही इस तरह दिङ्मूढ पतियो को अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ लेना चाहिये। इस तरह की समस्याओं को सुलझाते-सुलझाते वे सहज ही स्वराज्य की समस्या को हल करना सीख जायगे, जिससे उन्हे और देश को दूना लाभ होगा।

(नवजीवन)

हिन्दू-पत्नी

नीचे एक भाई के लम्बे पत्र का सारांश दे रहा हूँ, जिसमे उन्होने अपनी विवाहिता बहन के दुःखो का वर्णन किया है—

"थोड़े समय पहले मेरी बहन का विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया, जिसके चरित्र से हम अनजान थे। यह व्यक्ति बाद मे इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ है कि अनन्त व्यभिचार और विषय-भोग करते हुए भी उसकी वासना तृप्त नही होती। मेरी अभागिनी बहन को व्याह के बाद शीघ्र ही पता चला कि उसके स्वामी दिन-दिन निर्बल होते जारहे है। उसने उन्हे समझाया। लेकिन उसके इस औद्धत्य को वे सह न सके और उसे सबक़ सिखाने की ग़रज़ से उसके सामने ही व्यभिचार करने लगे। वह उसे बेतो से मारते, खड़ी रखते, औंधी टाँगते और भूखो मरने को विवश करते हैं। एक बार अपने स्वामी की व्यभिचार लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए बहन एक खम्भे से बांध दी गई, जिससे वह भाग न सके। मेरी बहन का हृदय टूक-टूक हो गया है, उसकी निराशा की हद नही, उसके सन्ताप को देखकर हमारा हृदय जल उठता है,

लेकिन हम लाचार हैं। कृपा कर कहिए हम या हमारी बहन क्या करे ? हिन्दू धर्म की दर्द-भरी अवस्था का यह एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म की जिसमे स्त्रियों को सर्वथा पुरुषों की दया पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसमे स्त्रियो को न कोई अधिकार प्राप्त है न रिआयते ही। अगर आदमी निर्दय और हृदय हीन है, तो बेचारी स्त्री का कहीं कोई सहारा इस दुनिया मे नहीं। आदमी अपने जीवन मे चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियां करे, कोई उसकी ओर अंगुली उठाने वाला नहीं लेकिन स्त्री जहां एक बार व्याही गई कि उसे सर्वथा अपने स्वामी की दया का पात्र बन कर रहना पड़ता है। एक दो नहीं हज़ारों बहनें अन्याय का शिकार बन बन कर रात दिन आर्त-स्वर से रोती-कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयों का नाश नहीं होता तब तक क्या उन्नति की आशा की जा सकती है ?"

पत्र लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। उन्होने अपने सारे पत्र मे अपनी बहन के दुःखो का रोमाञ्चकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब बाते नहीं आ सकतीं। पत्र लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है, वह असीम दुःख की वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो, किन्तु उनका यह सर्व व्यापी कथन एक उदाहरण के आधार पर खड़ा किया गया है, अतः अतिरञ्जित है, क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएं अपनी गृहस्थी की रानी बन कर पूर्ण संतोष और सुख की

अपनी लाचारी का अनुभव करने के बजाय उसके भाई या दूसरे रिश्तेदारों को चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें, उसे यह समझावें, तथा विश्वास दिलावे कि एक पापी-दुराचारी पति की खुशामद करना या उसकी सङ्गति की आशा रखना उसका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि उसका पति उसकी जरा भी चिन्ता नहीं रखता, तनिक भी पर्वा नहीं करता। अतएव क़ानून बन्धन को तोड़े बिना ही वह अपने पति से अलग रह सकती है और अपने आप यह अनुभव कर सकती है कि उसका विवाह कभी हुआ ही नहीं।

अवश्य ही एक हिन्दू पत्नी के लिए, जो तलाक नहीं दे सकती, इस सम्बन्ध मे क़ानून की रू से भी दो मार्ग खुले हैं। एक तो मारपीट करने के कारण पति को सजा दिलाने का और दूसरा, उससे जीविका के लिए आजीवन सहायता पाने का। लेकिन अनुभव से मुझे पता चला है कि अगर सर्वदा नहीं तो बहुधा तो अवश्य ही यह उपाय निरर्थक से भी बुरा सिद्ध हुआ है। इसके कारण किसी भी स्त्री को कभी सुख न मिला, उलटे पति का सुधार असम्भव नहीं तो कष्ट-साध्य जरूर बन गया है। समाज को इस रास्ते में कदापि न जाना चाहिए, पत्नी को तो किसी हालत में भी न्याय का आश्रय नहीं लेना चाहिए। प्रस्तुत मामले मे तो लड़की के माता-पिता उसको निर्वाह कर लने मे सब तरह समर्थ हैं; लेकिन जिन सताई हुई स्त्रियों को यह आश्रय प्राप्त नहीं, उन्हें भी आश्रय देने वाली अनेक संस्थायें देश मे दिन-दिन बढ़ रही हैं।

एक और प्रश्न रह जाता है; वे युवती स्त्रियां जो अपने क्रूर पति का साथ छोड़कर अलग होती है; या जिन्हें पति स्वयं घर से निकाल देते है, जो तलाक से मिलने वाली सुविधा प्राप्त नहीं कर सकतीं, वे अपनी विषयेच्छा को कैसे तृप्त करेंगी? मेरे विचार में कोई गम्भीर प्रश्न नहीं है; क्योंकि जिस समाज ने युगो तलाक़ की प्रथा को त्याज्य मान रक्खा है, उस समाज की स्त्रियां एक बार वैवाहिक जीवन का कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नही चाहतीं। जब किसी समाज का लोकमत इस तरह की सुविधा प्राप्त करना चाहता है, तो मेरे विचार में निस्सन्देह उसे वह मिल भी जाती है।

पत्र-लेखक के पत्र से जहां तक मैं समझ सकता हूं उनकी यह शिकायत तो नही है, कि पत्नी अपनी विषयेच्छा तृप्त नहीं कर सकती। शिकायत तो पति के भयंकर और बेलगाम व्यभिचार की है जैसा मै कह चुका हूं। मनोवृत्ति को पलट देना ही इसका उपाय है। हमारी अनेक अन्य बुराइयों के समान ही बेबसी की भावना भी एक काल्पनिक बुराई है। वह थोड़े से मौलिक विचार और नये दृष्टि-कोण से नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। ऐसे मामलो से मित्रो और रिश्तेदारों को चाहिए, कि वे अत्याचार के शिकार को शिकारी से छुड़ा कर ही सतोप न कर बैठें; बल्कि ऐसी स्त्री को समझाकर उसे सार्वजनिक सेवा के योग्य बनाने का प्रयत्न करें। इन स्त्रियों के लिये इस तरह की शिक्षा पति के शंकास्पद सहवास से कहीं अधिक सुखद और लाभ प्रद होगी। (यं० इं०)

बालिका-हत्या

नवजीवन के एक पाठक लिखते हैं—

"अगले सोमवार" असाढ़ सुदी नवमी के दिन १२ वर्ष की एक निर्दोष बालिका की, वृद्ध-विवाह की वेदी पर बलि होने वाली है। वर महाराज नागर ब्राह्मण है। उम्र ५९ वर्ष की होगी। साल में ३६५ दिन दवा के भरोसे जीते हैं। उनके लड़के लड़कियां भी हैं। लड़की बेचारी बे मां बाप की है। क्या आप इस विवाह को रोक नहीं सकते? क्या उस बूढ़े को आप कुछ नसीहत नही दे सकते? वा किसी भी प्रकार, इस बालिका-हत्या को क्या आप रोक नहीं सकते?"

उन्होंने नाम और पता सब कुछ लिखा है, तो भी मैं इस विवाह को रोकने में असमर्थ हूं। पत्र पिछले सप्ताह मे ही मुझे मिला। वर को या लड़की को वा उनके किसी सम्बन्धी को मैं जानता नहीं। उनके गांव मे कभी गया नही। इसे मेरी भीरुता कहो वा विवेक-बुद्धि परन्तु इस मामले मे पड़ने की मेरी हिम्मत नही होती है। पत्र की सब बातें सही मानने पर तो मन मे अवश्य ही ऐसी इच्छा हुई कि मै स्वयं उस गांव मे जाऊँ और

इस बूढ़े के जान-पहचान वालों से मिलूं वा लड़की के ही सम्बन्धियों से मिल कर उन्हें समझाऊँ। परन्तु इतना पुरुषार्थ मैं नहीं कर सका। तब सोचा कि नाम गांव छोड़कर सब बातें लिख दूँ और आगे कभी कोई अगर ऐसा विकराल काम करते समय मेरा यह लेख देख कर रुक जाय तो उसी मे सन्तोष मानूं।

विषयासक्ति के सिवाय, इस शादी का और दूसरा क्या कारण हो सकता है? धर्म तो यों कहता है कि मनुष्य के लिये एक ही विवाह ठीक है। स्त्री अगर बच्ची भी हो मगर विधवा हो जाय तो ऊँची जातियों में तो उसे जन्म भर विधवा ही रहना होगा। परन्तु बूढ़ी उम्र मे भी पुरुष, छोटी बालिका से विवाह कर सकता है, यह कैसी असह्य और दु:ख-जनक स्थिति है!! जाति-व्यवस्था का समर्थन यदि किसी बात से हो सके तो वह यही है कि वह ऐसे अत्याचारो को रोक सके।

जाति के यदि बड़े-बूढ़े वा युवक वर्ग हिम्मत करें तो ऐसी दयाजनक स्थिति न होगी और न देखने में आवेगी। दुर्भाग्य से बड़े लोग तो अपना धर्म भूल गये हैं। अपनी जाति की नैतिक प्रतिष्ठा के रक्षक होने के बदले वे तो प्राय: उसके भक्षक ही देखने मे आते हैं। उनकी दृष्टि सेवा-भाव व परमार्थ के बदले स्वार्थ की हो गई है। जहां स्वार्थ नहीं होता, और शुभेच्छा भी होती है वहां उनकी हिम्मत ही नहीं होती, परन्तु भिन्न-भिन्न जातियों की और हिन्दुस्तान की सारी आशा युवक-वर्ग पर ही लगी हुई है। यदि युवक अपने धर्म को समझे और उसी के अनुसार चलें

तो वे बहुत काम कर सकते हैं, और बेजोड़ विवाह को तो वे असम्भव कर दे सकते हैं। उनमें लोकमत को बना लेने के अलावा और कुछ भी करना बाकी नहीं रह जाता है। लोकमत बन जाने पर उसके विरुद्ध जाने की वृद्ध पुरुषों में हिम्मत नहीं हो सकेगी। और अपनी लड़कियों को इस प्रकार पानी मे फेकने की पिताओ की भी हिम्मत नहीं होती।

वृद्ध और बाल्य-विवाह करने वाले जब धर्म-रक्षा, गो-रक्षा और अहिसा की बाते करते हैं तो हँसी आती है। बात की बात मे करने लायक सुधारो को ताक पर रख कर स्वराज्य इत्यादि की बड़ी बड़ी बाते करना, आकाश-कुसुम तोड़ने के समान है। जिन मे स्वराज लेने का जोश आ गया है, उनमें साधारण सामाजिक सुधार कर लेने की योग्यता तो उससे पहले ही आ जानी चाहिये। स्वराज्य लेने की शक्ति तन्दुरुस्ती की निशानी है और जिसका एक भी अङ्ग रोगी होवे उसे तन्दुरुस्त नहीं कहते हैं। प्रत्येक नवयुवक को, और प्रत्येक देश-हित-चितक को यह बात याद रखने को आवश्यकता है।

(नवजीवन)

वृद्ध-बाल-विवाह

वृद्ध-बाल-विवाह के सम्बंध मे शोलापुर से एक महेश्वरी नवयुवक लिखते हैं—

"हमारे महेश्वरी समाज मे विवाह-पद्धति क़रीब क़रीब नष्ट हो चुकी है। प्रति वर्ष सैकड़ों कामी बूढ़े धन के बल पर बारह-चौदह वर्ष की अबोध कन्याओ से विवाह करके अपनी काम-तृप्ति किया करते हैं। इन कामी-जनों की काम-लालसा सारे समाज को रसातल की ओर ले जा रही है। बाल-विवाह और बेजोड़ विवाह प्रति वर्ष उतनी ही सख्या मे होते हैं, जितने कि वृद्ध-विवाह। जिस समाज की विवाह-पद्धति की यह करुणा-जनक दशा हो, उस मे भविष्य में नामी वीरो की आशा करना व्यर्थ है और यह स्पष्ट है कि उस समाज का अस्तित्व भी खतरे मे है। ऐसे समाज को सुधारने की अत्यन्त आवश्यकता है।

ऐसे अनुचित विवाहो के अवसर पर सत्याग्रह करके उन्हें रोकने के लिये हम ८—१० युवकों ने बाल-वृद्ध-बेजोड़ विवाह प्रति-बधक दल नामक संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा संघटित प्रयत्न करना शुरू कर दिया है। विवाह के हर एक रस्म

पर परिणाम-कारक सत्याग्रह करने से फल प्राप्ति होगी ही। इस पत्र के साथ छपी हुई पत्रिका है, जिससे आपको पता चलेगा कि किस तरह से हमने सत्याग्रह करना ठहराया है। महेश्वरी समाज की विवाह-पद्धति से आप परचित होंगे ही। उसकी हर एक रस्म पर किस तरह शांति-पूर्ण सत्याग्रह किया जाना चाहिये, इस पर और इसी के पुष्टी लिये के अन्य बातों पर लिखने की कृपा करें। हमे आशा है, हमारी प्रार्थना स्वीकार होगी।

आप पुरुष और स्त्री के किस आयु से किस आयु तक के विवाह को सुयोग्य विवाह समझते हैं ? योग्य उम्र के विवाहों के खिलाफ होने वाले किन विवाहो को सत्याग्रह द्वारा रोकना चाहिये; इस बात का भी स्पष्ट खुलासा कर दीजियेगा।

हाल ही मे दो बूढ़े महाशयो ने क्रमशः ५५ और ६० वर्ष की अवस्था मे तेरह हजार और बाईस हजार देकर १२—१२ वर्ष की कन्याओ से विवाह किया है। इसी तरह के और भी दो विवाह एक ही गांव मे होने वाले है, इसके विरोध मे हमने पत्रिकाओं द्वारा आन्दोलन शुरु किया, किन्तु अब पत्रिकाओ के आन्दोलन की अपेक्षा प्रत्यक्ष आन्दोलन की विशेप आवश्यकता है। कृपया इस पर भी नवजीवन मे लिखें।”

इसमे सन्देह नही कि ऐसे विवाहो के विरोध मे सत्याग्रह आवश्यक है। परन्तु सत्याग्रह कैसे हो सकता है ? सत्याग्रह की मर्यादा के बारे मे मैने बहुत दफा लिखा है। तथापि इस समय कुछ लिखना आवश्यक है। सत्याग्रही संयमी

होने चाहिये समाज में उनकी कुछ न कुछ प्रतिष्ठा होनी चाहिए। सत्याग्रही दुराचारी पर न कभी क्रोध करे न उससे वैर-भाव रखे। दुराचारी का कार्य चाहे जितना दुष्टता-पूर्ण हो, तो भी दुराचारी व्यक्ति के प्रति सत्याग्रही कठोर शब्द का प्रयोग न करे। वह कर्म और कर्मी का भेद कभी न भूले। कर्म दुष्ट (बुरे) और अच्छे होते हैं उनके कारण कर्मी दुष्ट न माना जाय। सत्याग्रही का एक आवश्यक मन्तव्य यह है कि इस संसार मे ऐसा कोई पतित नही है, जिसका प्रेमद्वारा सुधार न हो सकता हो। सत्याग्रही, दुराचार को सदाचार से, दुष्टता को प्रेम से, क्रोध को अक्रोध से, असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से दूर करना चाहते हैं। और कोई तरीक़ा इस दुनिया मे पापों को दूर करने का नहीं है। इसलिए जो मनुष्य सत्याग्रही होने का दावा करता है उसे आत्म-निरीक्षण करके देख लेना चाहिये कि क्या वह क्रोध द्वेष आदि से मुक्त है? जिन विकारो का विरोध करता है, स्वयं उन विकारों से मुक्त है या नही? आत्म-शुद्धि और तपश्चर्या मे सत्याग्रही की आधी विजय है। सत्याग्रही को विश्वास रखना चाहिए कि वगैर व्याख्यानादि के ही सत्य और प्रेम का अदृष्ट और अदृश्य परिणाम दृष्ट और दृश्य से कहीं ज्यादा होता है।

परन्तु सत्याग्रही को कुछ बाह्य-कार्य भी करने पड़ते हैं। उसका सबसे पहला काम तो यह है कि सुधार के लिए सार्वजनिक आन्दोलन करके कुप्रथा के प्रति विरोधी लोक-मत तैयार

करे। जब किसी बुराई का विरोधी लोकमत तैयार हो जाता है, तब धनिक भी उसका विरोध नहीं कर सकते हैं। लोक-मत सत्याग्रह का शक्ति-सम्पन्न शस्त्र है। लोकमत के रहते हुए भी कोई मनुष्य उसका आदर नहीं करता है, तब समझा जाय कि उसके बहिष्कार का समय आ पहुँचा है। बहिष्कार करने की दशा मे भी ऐसे सुधार-विरोधी मनुष्य का कोई अनिष्ट कभी न किया जाय। बहिष्कार का दूसरा अर्थ यहां असहयोग है। जो मनुष्य समाज का विरोध करता है, उसको समाज की सेवा का अधिकार नहीं है। इससे आगे बढ़ने की मुझे आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रत्येक वस्तु के लिये हमेशा कुछ न कुछ विशेष कार्य हो सकता है। विवेक-शील और बुद्धिशाली सत्याग्रही ऐसे कार्य का पता पा ही लेता है।

कामी-पुरुषो के काम की तृप्ति का प्रश्न विकट है। काम को न ज्ञान होता है, न विवेक। कामी पुरुष अपनी काम की तृप्ति किसी न किसी तरह कर लेता है। इसका उपाय यह है कि २० वर्ष के पहले और उसकी सपूर्ण सम्मति के अभाव मे कन्या का विवाह कभी न किया जाय तथा कोई भी कन्या वृद्ध के साथ विवाह न करे, ऐसी हालत मे वृद्ध कामी क्या करे? समाज के पास इसका कोई उत्तर नहीं रहता है। समाज का कर्त्तव्य निर्दोष बाला को बचाने का है, कामी के काम की तृप्ति करने का कदापि नही। जब समाज मे शुद्ध-पवित्रता की मात्रा बढ़ जाती है, तब कामी का काम भी शान्त हो जाता है।

एक दुःख प्रद-कहानी

रामगढ़ (जयपुर) से एक सज्जन लिखते हैं—

"यहां के अग्रवाल समाज मे एक ऐसी मृत्यु हो गई है, जिससे सारे शहर मे सन-सनी फैली हुई है; यानी एक ऐसे युवक का देहान्त हो गया, जिसका विवाह हुए केवल दो महीने हुये थे। बालिका न अभी अपने ससुराल गई थी और न उसे अभी इतना ज्ञान ही है कि वह कुछ समझ सके। वह बिलकुल निर्बोध है और केवल १२ वर्ष की है। वह यह जानती ही नहीं कि विवाह क्या है। इस तरह की बालिका को समाज ने विधवा करके बैठा दिया है। लोग कहते हैं; उसके भाग्य में यही लिखा था। यह उसके पूर्व-जन्म के पापो का फल है, उसे कौन रोके? न लड़की का पिता जीवित है न लड़के का ही; इस तरह लड़की एक दृष्टि से अनाथ है। लड़की की बूढी माता और दादी जीवित हैं। समाज के भय से भला उसकी माता विवाह का तो विचार ही कैसे कर सकती है? इस तरह दोनों ओर भीषण शोक छाया हुआ है, मगर उन्हें धैर्य दिलाने का कोई मार्ग नहीं सूझता।

मारवाड़ी समाज मे इस तरह की और भी कई बालिकायें मिलेंगी। वे भी इसकी तरह समाज को श्राप दे रही हैं, और यदि निकट भविष्य में समाज न चेता तो उसका सर्वनाश अवश्य होगा। आप मारवाडी समाज को इसके लिये चेतावनी दें तो बहुत कुछ असर हो सकता है। अवश्य ही बहुत से नवयुवको मे आपके वाक्य नवजीवन का संचार करते है। अतः आप इसके लिये 'हिन्दी-नवजीन' मे कुछ अवश्य ही लिखें।"

ऐसी करुणास्पद कथाएं भारतवर्ष मे बहुत सुन पड़ती हैं। और विशेषता यह है कि ऐसी घटनाएं धनिक जातियों में ही अधिक होती है क्योंकि धनिको मे वृद्ध लोगों को भी शादी करने की इच्छा होती है और जो लडकी विधवा हो जाती है उसे विधवा बनाये रखने मे ही वे लोग बड़प्पन मानते हैं। धर्म की तो यहा बात ही नही है। इसी कारण ऐसी घटनाये मारवाडी, भाटिया, इत्यादि वर्गों मे अधिक होती रहती हैं। इस व्याधि की एक ही औषधि है; प्रत्येक जाति में बुराइयों के खिलाफ विनयपूर्ण आन्दोलन शुरू किये जाय और उनके द्वारा सारी जाति में जागृति फैलाई जाय। जब समाज जागृत हो जायगा, तब दैव को अथवा पूर्व जन्म के पापों के फल को दोष देकर अथवा उन्हे निमित्त बना कर कोई बाल-वैधव्य का समर्थन नही करेगा। जब एक नवयुवक विधुर हो जाता है, तब उसे पूर्व जन्म के दोष के बहाने विवाह करने से कोई नही रोकता। इसलिये सुधारको को मेरी सलाह है कि वे निराश

न होवें बल्कि अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहें और आत्म विश्वास रख कर आगे बढ़ते चले जायं। हां यह बात अवश्य ही याद रखनी चाहिये कि अकेले व्याख्यानों द्वारा यह काम नहीं हो सकता, सत्याग्रह तक पहुँचने की आवश्यकता होगी। सत्याग्रह की मर्यादा पिछले अङ्कों में बताई गई है। सत्याग्रह-रूपी सूर्य के सामने बाल-वैधव्य-रूपी यह अंधेरा कभी ठहर नहीं सकेगा, क्योंकि सत्याग्रही के शब्द-कोष मे निष्फलता शब्द ही नहीं है।

(नवजीवन)

स्त्री की दर्दनाक हालत

एक नौजवान के पत्र का सार इस तरह है:—

"पन्द्रह वर्ष के एक बालक का ब्याह सत्रह वर्ष की एक युवती के साथ हुआ है। युवती अपने नामधारी पति से नाराज़ है, पति तो बड़ा होने पर इच्छानुसार दूसरा ब्याह कर सकता है। लेकिन युवती क्या करे? माता-पिता और समाज की दृष्टि से तो उसकी कोई अपनी इच्छा हो ही नहीं सकती। दूसरे वह युवती अशिक्षिता है, इस वजह से वह पुनर्विवाह का विचार भी नहीं कर सकती; अगर वह कुछ करना चाहती है तो सिर्फ़ अनीति; ऐसी युवती क्या करे? उसका रक्षक कौन हो?"

हिन्दू-संसार में ऐसी करुण-कथाओं के अगणित उदाहरण मिल सकते हैं। यह सम्भव नहीं कि उनका प्रतिकार शीघ्र ही किया जा सके। कई बातें ऐसी हैं जिन्हें इस समय सिवाय सह लेने के दूसरा चारा नहीं है। ऐसे मामलों में जो कुछ मुझे सूझता है वह मैं प्रकट करता हूँ। अगर कोई रिश्तेदार ऐसी युवती की मदद करना चाहे तो उसे दृढ़तापूर्वक उसकी मदद करनी चाहिए। किशोर होते हुए भी इस युवती का पति यदि

समझदार है, तो उसे चाहिए कि वह अनिच्छापूर्वक किये गये युवती के साथ के अपने इस सम्बन्ध से लाभ उठाकर उसे पढ़ाये, खुद उसे अपनी बहन समझे और उसके लिए योग्य पति ढूंढ़ दे। मैं जानता हूँ कि पन्द्रह वर्ष के किशोर से इतनी बुद्धिमानी की आशा नहीं की जा सकती, लेकिन इस समय इस उम्र के भी परोपकारी बालक मेरी नज़रों में हैं और इसी आधार पर मैंने ऊपर की बात लिखी है। तीसरा मार्ग है, लोकमत के सुशिक्षित बनाने का—जिन्हें ऐसे बेजोड़ विवाहों का पता चले, वे उन्हें प्रकट तो जरूर ही कर दें। इतना होते हुए भी अगर इस प्रकार की अभागिनी कन्याओं की रक्षा न हो सके तो भी यह निश्चित ही है कि धीरे-धीरे ऐसी घटनायें कम अवश्य होती जायगी।

उल्लिखित विचार-धारा से यह नतीजा निकलता है कि ऐसे कामों के लिए—

सत्यपरायणता

निर्भयता

दृढ़ता, और

साहस

की जरूरत है। जो विवाह, विवाह की सच्ची व्याख्या के अनुसार नहीं हुआ है, वह विवाह ही नहीं है, इसी आधार पर हम लोग आगे बढ़ सकेंगे। जिसे जाति का, ग़रीबी का और ऐसी ही दूसरी बातों का डर है, वह कभी सुधार कर

ही नहीं सकता। सुधारकों ने जानें कुर्बान की हैं, दुःख उठाये हैं, निन्दा सहन की हैं, भूखों मरे हैं। जहां इन कामों का अभाव रहा है वहां कभी सच्चे सुधार नहीं हो सके हैं।

एक डाक्टर लिखते हैं—

"मैं डाक्टर हूं। सन् १९२२ ई० में एम० बी०, बी० एस० की परीक्षा में पास हुआ हूं। एक पाटीदार भाई हमारे पास आए थे। कहते थे—'एक साधारण वणिक-कुटुम्ब की विधवा है, उसकी उम्र करीब ३०-३५ साल की है, उसे अपने मृत पति से दो लड़के हैं, उसे मेरा गर्भ रह गया, गर्भ करीब तीन महीने का होगा।' पाटीदार भाई स्वयं विवाहित हैं। यह चाहते थे कि मैं उन्हें गर्भपात की कोई दवा लिख दूं।

मैंने उनसे कहा कि मैं गर्भपात करना पाप समझता हूं और उस पाप में हाथ बटाना नहीं चाहता। आपको चाहिए कि आप उस गर्भ को परिपक्व होने दें। अगर आपको लोक लाज का भय हो तो, किसी अनजान स्थान में उस बाई को ले जाइये, आप भी वहीं रहिये और पूरे दिन हो जाने के बाद उसे बच्चा होने दीजिये, फिर अपने खर्च से बालक को किसी अनाथालय में रख दीजिये।

पाटीदार भाई मुझसे कहने लगे—वह विधवा गरीब है, हैसियत भी मामूली ही है, अगर उस विधवा की जाति वालों के कान तक यह खबर पहुंचेगी तो उसकी खूब बदनामी होगी उसका जीवन दुखमय हो जायगा, ऐसी हालत में वह मरना

ज़्यादा पसन्द करेगी।

मैंने उन्हें समझाते हुए कहा—ऐसे मामलों में हिम्मत रखनी चाहिए, आप में और उस बेवा बहन मे, दोनों में दृढ़ निश्चय होना चाहिए। मर्द कई बार भूल करते हैं, लेकिन समाज उनसे कोई जवाब-तलब नहीं करता। जब कमजोरी के चक्कर मे फस कर स्त्री पुरुष का शिकार बन जाती है तब उसके साथ समाज क्रूरता-पूर्ण बर्ताव करता है, अगर समाज इन मामलो में उदारता से काम न लेगा तो इस तरह के जुर्म होते ही रहेंगे और डाक्टर भी धन के लालच से मदद करते रहेंगे।"

यह डाक्टर धन्यवाद के पात्र हैं। उनका कहना बिलकुल ठीक है कि ऐसे मौके पर बहुतेरे डाक्टर फीस के लोभ मे पड़ कर लोगों के पापो मे मददगार होते हैं। लेकिन यह लेख मैं डाक्टरों को उनका धर्म बताने के लिए नहीं लिख रहा हूं यह पत्र स्त्री की दुर्दशा का दूसरा चित्र है। उसका इलाज वही है जो ऊपर बताया गया है। अहिंसा-धर्म के नाम पर अहिंसा को डुबाने वाला आजकल का समाज इस तरह की निर्दयता से काम लेते समय बिल्कुल भी आगा-पीछा नहीं सोचता, हर दिन स्त्री रूपी गौ की हत्या किया ही करता है। स्त्री के सतीत्व की रक्षा के बहाने वह उस पर कई प्रकार के अंकुश लादता है, लेकिन जबर्दस्ती किसी की पवित्रता की रक्षा नहीं की जा सकती।

स्त्री या पुरुष पर्दे की ओट में पाप करें इससे बेहतर तो

यह है कि वे जाहिरा तौर पर नम्रता में अपनी कमज़ोरी को क़बूल करके पुनर्विवाह वगैरह करें और पाप से बचें। मगर स्त्री की मदद कौन करे ? मर्द ने तो अपना रास्ता साफ बना लिया है, लेकिन स्त्री पर जुल्मी क़ायदे लाद कर पुरुषों ने जो दोष अपने सिर ओढ़े हैं, उनके प्रायश्चित के तौर पर उन्हें अब स्त्री की मदद करनी चाहिए। जिन बूढ़े के विचार एक बारगी ही पुख्ता हो गये हैं, उनसे ऐसे प्रायश्चित की आशा रखना फिजूल है। हां, नौजवानों का मर्यादा पालन करते हुये स्त्रियों की मदद करना मुमकिन है। आखिर स्त्री का उद्धार तो स्त्री ही करेगी; लेकिन आज भारत में ऐसी स्त्रियों की संख्या बहुत थोड़ी है। जब नौजवान बहुत बड़ी तादाद में स्त्री-जाति की मदद के लिये दौड़ पड़ेंगे तभी स्त्रियों में जागृति फैलेगी और उनमें से सेवा-परायणा वीरबालाएं व वीरांगनाएं पैदा होंगी।

(नवजीवन)

स्त्रियों की दुर्दशा

एक काठियावाड़ी भाई ने, जिन्होंने अपना नाम व पता भी लिख भेजा है, अपने पत्र मे दो स्त्रियों का वर्णन लिखा है। उनके पत्र को सक्षेप मे नीचे देता हूं—

"धनवानो की पत्नियां अपनी विरासत के हक छोड़ दें, इस आशय का आपका लेख पढ़ कर नीचे लिखे दो क़िस्से भेजने की इच्छा हुई है—

१—……के रहने वाले श्री……की पहली स्त्री को, जो सिर्फ खूबसूरत न होने के कारण त्याग दी गई है, अब तक उनके पति की ओर से भरण-पोषण की कोई सुविधा प्राप्त नहीं हुई है। श्री……ने दूसरा विवाह किया था, लेकिन दूसरे व्याह की पत्नी का देहांत हो जाने से अब उन्होने तीसरा व्याह किया है।

यह पति नाम-धारी उच्च ब्राह्मण जाति के है, तथा—एक उच्च कुटुम्ब मे जन्मे है। उन्होने बी० ए० तक की शिक्षा पाई है। आज कल वह बम्बई सरकार के पोलिटिकल आफिस में २००) मासिक पर नौकर हैं। इसके सिवाय उन्हे अपते पिता की ओर से अच्छी सी जायदाद विरासत मे मिली है।

इन बहन के नाम-धारी पति देव जब आज से १० साल पहले दूसरा व्याह करने को तैयार हुए, तब इनके सगे सम्बन्धियों ने हमारे ब्राह्मण समाज की और······राज्य की सहायता चाही। लेकिन 'पति देव' ठहरे धनवान्. उन्होने जाति के ब्रह्म-भोज में ३००) देने की बात कह कर विरोध का मुंह बन्द कर दिया। राज्य को भी उनसे काम पड़ता है, इसलिए राज्य ने भी श्री······के काम मे दखल देने का साहस नही किया। उलटे विरोधियों का दमन करके राज्य ने उनक मार्ग को और भी सरल बना दिया। अब तीसरा व्याह करके अपनी पहली पत्नी को तिलतिल कर के मार डालना ही श्री······ने उचित समझा है।

२—अब दूसरा किस्सा सुनिए:······के जौहरी······का एक लडका छोटी उम्र मे, आज से दस साल पहले, गृह-कलह के कारण, अपनी स्त्री और दो बच्चो को छोड़कर कहीं बाहर चला गया है। श्री······के अपनी नई पत्नी से दो पुत्र है। उन्होंने इस घर से निकले हुए पुत्र की स्त्री तथा उनकी सन्तान के भरण-पोषण का अब तक कोई प्रबन्ध नहीं किया है। आज तक तो गांव वालों का काम करके जैसे-तैसे इस बहन ने अपना पेट पाला है, लेकिन अब लड़को को पढ़ाने का सवाल उनके सामने है। उन्होंने······राज्य से सहायता की प्रार्थना की। यह किस्सा औदीच्य जाति का है, इसलिए राज्य वालो ने जाति पर ही इस निर्णय का भार छोड़ दिया। इन बहन के ससुर जौहरी हैं, स्वामी-नारायण संप्रदाय के मन्दिर के ट्रस्टी है, और राजनैतिक,

सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में उनका अच्छा प्रभुत्व है। उन्होंने......में सोने के शिखर वाला स्वामी-नारायण का एक मन्दिर बनवाया है, इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि उनकी आर्थिक-स्थिति अच्छी है। इतना होने पर भी इन बहन की उचित सहायता का कोई प्रबन्ध अब तक हमारे समाज ने नहीं किया है। फल-स्वरूप पहले क़िस्से वाली बहन की तरह इन बहन की और इनके बच्चों की हालत भी दर्दनाक है।

क्या हिन्दुओं की विरासत के हक़ से सम्बन्ध रखने वाले क़ानून ऐसी तिरस्कृता पत्नियों (और उनकी सन्तानों) को उनके पति या ससुर से उनकी स्थिति के अनुरूप जीविका और विरासत का हक़ मांगने का अधिकार देते हैं ? ऐसे अधिकारों के मिलते हुए भी अगर वे गुज़ारे के लिए कुछ न मांगे तो पेट कैसे पालें ? अगर ऐसी दुरदुराई हुई बहनों से हम जीविका के लिए प्रार्थना करने का मोह छुड़ाने की कोशिश करें तो क्या उनकी और हमारी (सुधारकों की) इस निष्क्रियता से कुलाभिमानी पुरुषों का स्वेच्छाचार और अधिक न बढ़ेगा ? इसके कारण स्त्रियों के कुमार्ग-गामी होने, बुरे प्रलोभनों में फंसने का क्या डर नहीं है ? इन बहनों के अपने अधिकारों का मोह छोड़ देने से निर्दय पतियों और ससुरों का क्या हौसला नहीं बढ़ेगा" ?

ये बातें इतनी विस्तार के साथ कही गई हैं कि इनमें अतिशयोक्ति का डर नहीं रहता। इस तरह की दर्दनाक हालत में फंसी हुई बहनें क्या करें, यह अवश्य ही एक महत्त्व

का प्रश्न है। अधिकतर ऐसी स्त्रियां खुद अपङ्ग होती हैं; अर्थात् उन्हे अधिकारों का ज्ञान नहीं होता, और अगर होता भी है, तो वे बेचारियां यह नहीं जानतीं कि क्या किया जा सकता है। मुमकिन है कि वे यह भी जानती हों, फिर भी वैसे उपायों से काम लेने मे वे अपने को असमर्थ पातीं हैं। इस लिए रिश्तेदारों की सहायता से ही उनका प्रश्न हल हो सकता है। इन पत्र लेखक ने जिस लेख का जिक्र किया है, वह समझदार और असमर्थ स्त्रियों के लिये लिखा गया था। इन दोनों बहनों को अगर कानून की सहायता मिल सकती हो तो उन्हें उससे लाभ उठाना चाहिये, स्थानीय लोक-मत बनाया जा सके तो बनाना चाहिए। धन की या राज्य-सत्ता की प्रतिष्ठा से चौंधिया जाने की जरा भी जरूरत नहीं है। ऐसी स्त्रियों को आश्रय देने वाले महिला-आश्रम भी गुजरात मे मौजूद हैं। वहां रख कर उन्हें शिक्षिता और स्वावलम्बिनी बनाने का प्रयत्न भी साथ-साथ करना चाहिये। अकसर झूठी लोकलाज के कारण ऐसे अन्यायों पर पर्दा डाल दिया जाता है, लेकिन मेरी दृष्टि मे यह अनावश्यक और अनुचित है। बहुतेरे अन्याय और दुराचार ऐसे हैं, जो प्रकाश पाते ही मिट जाते हैं।

(नवजीवन)

विधवा और विधुर

जब से विधवा-विवाह के बारे में मैंने अपना अभिप्राय प्रकट किया है तब से कई प्रकार के प्रश्न आते हैं। बहुतेरों के उत्तर देने की आवश्यकता न प्रतीत होने से मै उनका उल्लेख नहीं करता मगर निम्न-लिखित प्रश्नावली विचारणीय है—

१—किस उम्र तक की विधवाओं को शादी करने की अनुमति दी जाय ?

२—विधवा-विवाह की स्वीकृति मिलने पर निश्चित उम्र से अधिक आयु की विधवा यदि अपना विवाह कर देने को कहे और उससे लिये उद्यत हो जाय तो उसे किस प्रकार रोका जाय ?

३—विधवा विवाह के पास हो जाने पर यदि सन्तान-वती और गत-यौवना विधवाएं विवाह करना चाहे तो क्या उन्हें ऐसा करने की अनुमति दी जाय ?

४—श्रीयुत रामानन्द चटर्जी, सम्पादक 'माडर्न-रिव्यू' द्वारा लिखित एक लेख लाहौर से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी पत्र 'विडोज-काज़' में प्रकाशित हुआ है, उससे प्रकट होता है कि

३५ वर्ष तक की उम्र तक की विधवायें पुनर्विवाह कर सकती हैं। क्या यह उचित है ?

५—पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित हो जाने पर विधवाओं में फिर से शादी कर लेने की इच्छा जागृत हो जायगी और वे विधवायें भी जो अब तक लोक-प्रथा के कारण विवाह का ध्यान तक नहीं धरती थीं, विवाह करने लगेंगी।"

इन प्रश्नों के पृथक्-पृथक् उत्तर देने की आवश्यकता नही है; क्योंकि इन प्रश्नों के बारे में मेरे अभिप्राय के न समझने के कारण मनुष्यों मे ग़लत-फ़हमी फैल रही है। जो अधिकार यानी रिआयत विधुर को है, वही विधवा को होनी चाहिए, अन्यथा यह विधवा पर बलात्कार करना है, और बलात्कार हिंसा है, जिसका परिणाम बुरा ही होता है। जो प्रश्न विधवा के लिये किये जाते हैं वे विधुर के लिये उठते ही नही हैं। इसका कारण तो यही हो सकता है कि स्त्रियो के लिये पुरुष ने कानून बनाये हैं। यदि कानून बनाने का कार्य स्त्रियो के जिम्मे होता, तो वी कभी अपना अधिकार पुरुष से कम नहीं रखती। जिन मुल्कों मे स्त्रियों को कानून बनाने का अधिकार है, वहां स्त्रियो ने भी अपने लिये ऐसे ही आवश्यक क़ानून बना लिये है। अतएव उक्त प्रश्नो का उत्तर यह हुआ कि पिता का धर्म है कि वह निर्दोष जवान विधवा की पुनर्लग्न करे, और जो विधवा पुनर्लग्न करने की इच्छा करे उसके रास्ते मे कोई रुकावट न डाली जाय।

यह मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है कि इस प्रकार की

व्यवस्था से सब विधवाएं पुनर्लग्न कर लेंगी, जिन मुल्कों में विधवा को पुनर्लग्न करके की रिआयत है, वहां भी सब विधवाएं शादी नहीं करतीं, न सब विधुर ही शादी करते हैं। जिस वैधव्य का पालन स्वेच्छा से होता है, वह हमेशा सराहनीय है। बलात् पलाया जाने वाला वैधव्य निन्द्य है और वर्णसंकरता-वर्द्धक है। मैं ऐसी अनेक विधवाओं को जानता हूँ, जिनके मार्ग में कोई रुकावट न होते हुए भी जो पुनर्लग्न करना नहीं चाहतीं।

—:o:—

विधवा-विवाह (१)

एक पत्र-प्रेषक ठीक ही पूछते हैं कि हिन्दू विधवाओं के सम्बन्ध में सर गंगाराम के दिये हुए अंकों का तात्पर्य क्या सभी हिन्दूओं से है या केवल उनसे जो चलन के कारण पुनर्विवाह नहीं कर सकती हैं ? मैंने सर गंगाराम से इस प्रश्न का उत्तर मँगवा लिया है और उनका कहना है कि मेरे दिये हुए अंकों में समस्त हिन्दू-जाति की विधवाएँ आजाती हैं।

सर गंगाराम ने यह भी लिखा है कि "केवल एक श्रेणी की विधवाओं के अँक देना तो बेकार होता। हम सब को यह बात मालूम है कि मुसलमानों और ईसाइयों मे विधवा का पुनर्विवाह हो सकता है। तिस पर भी इन जातियों में ऐसी अनेक विधवाएँ हैं जो कि आगे या पीछे विवाह करेंगी ही।

मैं तो केवल हिन्दू विधवाओं से पुनर्विवाह न करने की रुकावट को उठाना चाहता हूँ, मैं प्रत्येक विधवा को पुनर्विवाह करने के लिए मजबूर करना नही चाहता।"

निस्सन्देह ये विचार अच्छे हैं, लेकिन हिन्दुओ मे केवल वे ही उपजातियाँ इस बन्धन मे हैं, जिनमे पुनर्विवाह वर्जित

है। इन उपजातियों को छोड़ कर शेष सभी हिन्दुओं में विधवाएँ क़रीब-क़रीब उतनी ही आज़ादी के साथ विवाह करती हैं जितनी कि ईसाइयों और मुसलमानों में। हाँ, न्याय की दृष्टि से यह कहना मुनासिब होगा कि सभी ईसाई या मुसलमान विधवाएँ पुनर्विवाह "आगे पीछे" नहीं कर लिया करतीं है। इनमें ऐसी बहुत सी विधवाएँ हैं जो अपनी स्वेच्छा से अविवाहिता ही रहती है। यह बात तो ठीक है कि जिन जातियों मे पुनर्विवाह मना है उनके अतिरिक्त अन्य जातियों मे भी इस बात की ओर झुकाव रहता है, कि वे "उच्च" कहलाने वाली जातियो की देखा-देखी अपनी जाति की विधवाओ को अविवाहिता ही रखें, लेकिन जब तक ठीक-ठीक संख्या का पता नहीं चलता है, यह बिल्कुल ठीक-ठीक बतलाना मुश्किल है कि विधवाओ को पुनर्विवाह से रोकने की प्रथा ने कहां तक नुकसान पहुँचाया है।

इस बात का ठीक-ठीक पता लगा लेना आवश्यक है कि उच्च जातियों मे जहां पुनर्विवाह वर्जित है, २० वर्ष से नीची उम्र की विधवाएँ कितनी हैं। उक्त पत्र लिखने वाले जिन्होने कि शायद पुनर्विवाह के विरुद्ध प्रचलित बंधन को न्यायसँगत ठहराने की इच्छा से प्रेरित होकर मुझे पत्र लिखा है, तथा ऐसे ही विचार रखने वाले व्यक्तियों की उन बुराइयों को न भूल जाना चाहिए जो कि युवती विधवाओं को पुनर्विवाह न करने देने के कारण उत्पन्न होती है।

विधवा-विवाह (२)

एक विधवा बहन लिखती है—

"नवजीवन" में आप या अन्य कोई समय-समय पर विधवाओं के विषय में लेख लिखते रहते हैं, उन सब का यह अभिप्राय होता है कि कम उम्र वाली विधवाओं का पुर्नविवाह हो तो अच्छा। आत्मोन्नति को अप्राप्य मानने वाले तो ऐसा लिख सकते है, पर जब आप ऐसा लिखते हैं तब हृदय को भारी चोट पहुँचती है। अन्य देशों के अनुकरण से भारत की जो अवनति हुई है उसमें अभी इतनी ही कमी रह गई है, क्या अब उस कमी की भी पूर्ति कर देना है ? कितने ही लोगो का कहना है कि "समाज की वर्त्तमान सामाजिक अवस्था तथा परिस्थिति को भी देखना पड़ता है।" पर मुझे तो यह कथन मनुष्य की केवल वासना का पोषण करने के लिए ढूढा हुआ बहाना ही मालूम होता है। जब तक वासना रूपी दीपक मे भोग रूपी तेल डालते जायँगें तब तक वह अधिकाधिक प्रज्वलित होता जायगा; इसका सच्चा उपाय यह है कि हम उसे किस तरह बुझा सकते हैं। बचपन ही से माता

के दूध के साथ ही लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे परिस्थितियों के अनुकूल अपना जीवन बनाना सीखें। आप शायद कहेंगे "ऐसा होने मे तो बहुत समय लगेगा" पर यों भी आज सारा समाज पुनर्विवाह का समर्थक नहीं है। अतएव इस दशा में अनुकूल लोकमत होने से लिये भी समय ज़रूर ही लगेगा। फिर ऐसी प्रगति किस काम की है जो काल-व्यय के साथ साथ आत्मा का ह्रास करती हो। देवी गार्गी और मैत्रेयी, झांसी की रानी और चित्तौड़ की पद्मिनी की जननी यही भारत-माता है; उसकी लड़कियों को पुनर्विवाह क्यों करना चाहिये? चरखे के प्रताप से अब भरण-पोषण की भी वैसी चिन्ता नहीं रही। कुटुम्ब की यदि एक भी स्त्री विधवा हो जाय तो उससे सारे कुटुम्ब के पुण्य की खामी पाई जाती है, इसका प्रायश्चित उन कुटुम्बियो को उस विधवा के प्रति अपना कर्तव्य पालन करके करना चाहिये। इसके विपरीत उससे दूर-दूर भागने से कैसे काम चल सकता है? ब्रह्मचर्य के तो आप हामी है। विधवा, जिन्हें क़ुदरत ने ही ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी है, देश की आदर्श सेविका क्यो न बनें? जगत् की माता बन कर क्यों न संसार के दुःखों का हरण करे? मैंने ऐसी कई विधवाएँ देखीं है जो पांच से सात वर्ष की उमर में ही विधवा हो गई हैं और जो अभी शान्ति और सन्तोष के साथ अपने कुटुम्बियों की यथा-शक्ति सेवा कर रही हैं।"

लेखिका बहन को यह पत्र शोभा देता है । पर इससे विधवा विवाह के प्रश्न का निपटारा नहीं हो सकता । बाल-विधवा, धर्म जैसी किसी वस्तु को ही नहीं जान सकती फिर विधवा-धर्म की बात ही हम कैसे कर सकते हैं ? धर्म-पालन के साथ-साथ हम यह कल्पना कर लेते हैं कि एक बालक जिसे झूठ सच का कोई ज्ञान नहीं है, असत्य के दोष का भाजन है ? नौ साल की बालिका नहीं जानती कि विवाह क्या वस्तु है, न वह यही जानती है कि वैधव्य क्या चीज़ है ! जब उसने विवाह ही नहीं किया तो वह विधवा किस तरह मानी जा सकती है ? उसका विवाह तो करते हैं माता-पिता और वे ही समझ लेते हैं कि वह विधवा हो गई; अर्थात् यदि वैधव्य का पुण्य किसी को मिलता हो तो कहना होगा कि वह उसके माता-पिता को ही मिलता है । पर क्या नौ साल की बालिका का बलिदान कर वे इस पुण्य के और यश के भागी हो सकते है ? और यदि हो भी सकते हों तो हमारे सामने उस बालिका का सवाल तो ज्यों का त्यों खड़ा ही रहता है । मान लीजिये कि अब वह बीस बरस की हो गई । ज्यों-ज्यो वह समझदार होती गई, उसने अपने आस पास की परिस्थिति से यह जान लिया कि वह विधवा मानी जाती है पर इसके धर्म को तो वह नहीं समझती । यह भी हम मान लें कि बीस बरस की अवस्था को पहुँचते-पहुँचते धीरे-धीरे उसमें स्वाभाविक विकार पैदा हुए और बढ़े भी । अब उस

बाला को क्या करना चाहिये ? माता-पिता पर तो वह अपने भावों को प्रकट कर ही नहीं सकती, क्योंकि उन्होंने यह संकल्प कर लिया है कि मेरी युवती लड़की विधवा है उसका विवाह नहीं करना है।

यह तो एक कल्पित दृष्टान्त है। भारत में ऐसी एक दो नहीं, हजारों विधवायें हैं। हम यह तो देख ही चुके कि उनको वैधव्य का कोई पुण्य फल नहीं मिलता। ये युवतियां अपने विकारों को तृप्त करने के लिये अनेक पापो मे फसती हैं। इसके लिये कौन जिम्मेवार है। मेरे ख्याल से उनके माता पिता तो अवश्य ही उनके इन पापों मे हिस्सेदार होते हैं। पर इससे हिन्दू धर्म कलङ्कित होता है, और प्रतिदिन क्षीण होता जाता है। धर्म के नाम पर अनीति बढती जाती है, इसलिये यद्यपि इन वहन के जैसे ही विचार स्वयं मैं भी पहले रखता था, पर अब विशेष अनुभव से मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि जो बाल विधवायें युवावस्था को प्राप्त करने पर पुनर्विवाह करने की इच्छा करें उन्हे उनके लिये पूरी स्वतंत्रता और उत्तेजना मिलनी चाहिये; इतना ही नहीं बल्कि माता-पिता को चिन्ता पूर्वक इन बालाओं का विवाह उचित रीति से कर देना चाहिये। इस समय तो पुण्य के नाम पर पाप का प्रचार हो रहा है।

बाल-विधवाओं का इस तरह विवाह करदेने पर भी हिन्दू-धर्म शुद्ध वैधव्य से तो जरूर ही अलङ्कृत रहेगा। दम्पति-स्नेह का अनुभव कर लेने वाली स्त्री यदि विधवा हो जाय और वह

स्वयं पुनर्विवाह न करना चाहे तो उसका संयम बाहरी नियन्त्रण का अहसानमन्द न रहेगा और न संसार में ऐसी शक्ति ही है जो उसे विवाहित करने के लिए बाध्य कर सके। उसकी स्वाधीनता तो हमेशा सुरक्षित रहेगी।

जहां आत्म-लग्न ही नहीं वहां आत्म-लग्न का आरोप करना अनीति कही जायगी। बाल-लग्न मे आत्म-लग्न के लिये अवकाश ही नहीं। आत्म-लग्न सावित्री ने किया, सीता ने किया, दमयन्ती ने किया। ऐसी देवियों के विषय मे हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि उन्हे वैधव्य प्राप्त होने पर वे पुनर्विवाह करेगी। इस प्रकार का शुद्ध वैधव्य रमाबाई रानडे का था। आज वासन्ती देवी को यह वैधव्य प्राप्त है, ऐसा वैधव्य हिन्दू-संसार का अलकार है, उससे वह पुनीत होता है। बाल-विधवाओ के कल्पित वैधव्य से हिन्दू-संसार पतित होता जा रहा है। प्रौढ विधवाएं अपने वैधव्य को सुशोभित करते हुए बाल-विधवाओं का विवाह करने के लिये कटिबद्ध हों और हिन्दू समाज मे इस प्रथा का प्रचार करे। उन बहनो को जो उपर्युक्त पत्र लिखने वाली बहनो के सदृश विचार रखती हैं, अपने इस विचार को सुधार लेना चाहिये।

मैं जिस निर्णय पर पहुँचा हूँ उसका कारण बालिकाओ का दुःख नही है बल्कि इसका कारण है मेरे हृदय मे उत्पन्न वैराग्यता से सम्बन्ध रखने वाला सूक्ष्म-धर्म विचार और उसी को प्रदर्शित करने का प्रयत्न मैंने यहां किया है।

बाल पत्नियों के आंसू

बङ्गाल की एक हिन्दू महिला लिखती है—मैं नहीं जानती कि हिन्दू-समाज की बाल-पत्नियों के पक्ष मे लिखने के लिए मैं आप को किस प्रकार धन्यवाद दूं! मद्रास वाली घटना अपने ढंग की अकेली नहीं है। एक वर्ष हुआ कि वैसी ही एक घटना कलकत्ते में हुई थी। उस लड़की की अवस्था केवल दस वर्ष की थी। अपने पति के साथ दो रात रह कर उसने पति के पास जाने से कतई इन्कार कर दिया। लेकिन एक दिन उसकी मां ने उसे अपने पति को पान दे आने को भेजा। शायद उस बेचारी लड़की ने सोचा कि मैं पान देते ही लौट आऊंगी; लेकिन उसके आदमी ने पान लेकर दरवाज़ा बन्द कर लिया और वह कमरे के बाहर न आ सकी। थोड़ी ही देर में एक दर्दनाक रोने की आवाज़ सुनाई दी। लड़की की मां कमरे की ओर दौड़ी। जब दरवाज़ा खोला गया, तब लड़की मरी हुई पाई गई उसके सिर में बड़ी सख़्त चोटें आई थीं। उस आदमी पर मुक़द्दमा चला और उसे फांसी का दण्ड मिला।

हमारे समाज में न जाने ऐसे कितने मामले अप्रकाशित रूप

से नहीं हुआ करते हैं ! मैं खुद कई ऐसे मामले जानती हूँ कि जिनमे बाल-पत्नियो ने सयानी होने के पहले पति से दूर रहने की चेष्टा की है, लेकिन उनका पक्ष कौन लेगा ? हमारे समाज मे स्त्रियां सदा अपना दुःख नम्रता के साथ मौन रह कर झेलती हैं। किसी भी कुप्रथा के विरुद्ध युद्ध करने की शक्ति उनमे नहीं रही है ! दूसरी ओर हमारे पुरुष लोग, जिनमे असीम शक्ति है, सदा अपने ही सुख की बातें सोचा करते हैं और दुखिया स्त्री के आराम का ख़याल भी नहीं करते ।

मेरी एक सहेली दस वर्ष की अवस्था मे व्याही गई । वह अपने पति के पास जाना नहीं चाहती थी, इसलिए पति ने एक सयानी लड़की से दूसरा विवाह कर लिया । वह अभागिनी वाला आज पूर्ण युवावस्था में है और अपने पिता के यहाँ रहती है ।

मैंने एक महिला से सुना है कि गांवों में, नीच जातियों में पति अपनी बाल-पत्नियों को इसलिए पीटा करते हैं कि वे उनसे दूर रहने की कोशिश करती हैं और रात के समय अपने पति के शयनागार मे आसानी से पहुँचाई नहीं जा सकतीं ।

जहां पीड़ितो की कोई सुनाई नहीं और उनको अपने कष्ट स्वयं प्रकट करने का कोई मौक़ा नहीं, वहां राक्षसी-प्रथाओं का समर्थन करना आसान है ।"

चाहे उपरोक्त चित्र सच हो अथवा अत्युक्ति पूर्ण, बात ठीक है । मुझे इसके समर्थन मे साक्षी या प्रमाण खोजने की

जरूरत नहीं है। मैं एक चिकित्सक को जानता हूँ; उनकी डाक्टरी खूब चलती है; पहली स्त्री के मरने पर उन्होंने एक ऐसी छोटी उमर वाली कन्या के साथ शादी करली जो कि उनकी लड़की जँचती है। वे दोनो पति-पत्नी की भांति रहते है। मै एक दूसरी मिसाल भी जानता हूँ; इसमे एक ६० वर्ष के विधुर शिक्षण-इन्स्पेक्टर ने एक ९ वर्ष की कन्या से पाणिग्रहण किया! हालां कि सब लोग इस बेहूदा हरकत को जानते थे और उसे ऐसा मानते भी थे, लेकिन वह अपने पद पर बना रहा और सरकार तथा जनता उसकी इज्जत भी करती रही! ऐसी और भी कई घटनायें अपनी तथा अपने दोस्तो की याददाश्त से बतलाई जा सकती है।

उपरोक्त महिला का यह कथन ठीक है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियो मे किसी भी कुप्रथा के विरुद्ध युद्ध करने शक्ति शेष नहीं रह गई हैं। इसमे शक नहीं कि पुरुष ही मुख्यतः समाज की ऐसी स्थिति के लिए जिम्मेवार है, लेकिन क्या स्त्रियां सारा दोष पुरुषो के मत्थे मढ़ कर अपनी आत्मा में निर्दोष रह सकती है? क्या पढ़ो लिखी स्त्रियो का अपने समाज के प्रति तथा पुरुष समाज के प्रति भी यह कर्त्तव्य नही है कि वे सुधार का काम अपने ऊपर उठा ले? यह शिक्षा जिसे वे पा रही हैं, किस काम की है, अगर विवाह के उपरान्त वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतलिया बन जायँ और कम उम्र में ही बच्चे पैदा करने लग पड़े? वे अगर चाहें तो अपने

खातिर वोट्स के लिए लड सकती हैं ? उसमें न तो बहुत समय ही जाता है और न कुछ कष्ट ही होता है। वे उन्हे निर्दोष आनन्द का साधन प्रस्तुत करते है। लेकिन ऐसी स्त्रियां कहां हैं जो बलपत्नियां और बाल-विधवाओं के उद्धार का काम करें और जो तब तक न स्वयँ चैन ले और न पुरुषों को चैन लेने दे जब तक कि बाल-विवाह असंभव न हो जायं और जब तक प्रत्येक बालिका मे इतना साहस न आ जाय कि वह परिपक्व अवस्था मे उसकी ही पसंदगी के वर के साथ विवाह करने के सिवा, शेष दशाओं मे विवाह करने से इनकार कर सके ?

" यङ्ग-इण्डिया "

स्त्रियां और गहने

तामिल नाडू से एक महिला डाक्टर ने मेरे पास गहनों की भेंट भेजी है। उसके साथ जो पत्र भेजा है, उससे भेंट का महत्व बढ़ जाता है। इसलिये और चूँकि दूसरो के लिए यह पत्र उदाहरण का कार्य करेगा, नाम हटा कर मैं इस का सारांश नीचे देता हूँ।

"कल मैंने आप की सेवा मे एक जोड़ी कान की बालियों और हीरे की एक अगूठी भेजी थी। ये मुझे १२ वर्ष हुई—साहेब के राजमहल से महाराजा साहेब के पुत्र-जन्म के अवसर पर मिली थीं, मुझे यह सुन कर बड़ा कष्ट हुआ था कि जब आप यहाँ से गुज़रे थे, महाराज साहेब ने सरकार के डर से आप को निमंत्रण तक देने का साहस नही किया। आप सहज ही कल्पना कर सकते है कि पहले जो जवाहरात मेरे साथ साथ रहते थे, उन्हीं को देख कर मेरे मन मे अब क्या भावनाये उठने लगीं। अब उन्हे देखकर मेरे दिल मे आग लग जाती थी, फिर जिन भूखे करोड़ो के बारे मे आपने भाषण किया था, उनके लिए सहानुभूति होने लगती थी। मैंने मन ही मन

कहा, "क्या ये गहने लोगों के ही धन से नहीं बने हैं ?" तब उन्हें आपके पास भेज देने का निश्चय किया। खादी-कार्य के लिए आप इनका इस्तेमाल कर सकते है। और यों कुछ भूखो मरने वालो को मदद दे सकते है। मुझे इसका निश्चय है कि मेरे बकस के एक कोने मे पड़े रहने की बनिस्बत उनका यह ज्यादा अच्छा उपयोग होगा। एक मित्र ने उनकी क़ीमत ५००) रुपया आंके हैं। इसलिए ५००) रुपया के लिए उनका बीमा कराया गया है। मैं यही आशा करती हूँ कि कोई उदार सज्जन, उस परिस्थिति को जान कर, जिसमे कि ये गहने दिये जाते है, आपको उनकी असल कीमत से कुछ अधिक देंगे। आप इस पत्र का जो उपयोग करना चाहे, कीजियेगा।"

यह भी ध्यान देने लायक़ बात है कि भय का कोई कारण न होते हुए भी हम किस भांति भय की कल्पना किया करते है। कितने राजो महाराजो ने खुल्लमखुल्ला और खुशी से खादी का समर्थन किया है और उसकी मार्फत गरीबों के हित का, जिनसे उन्हे अपना धन मिला है। यह सच है कि खादी का राजनैतिक पहलू भी है, मगर हम अभी उस हद तक नहीं आये हैं कि सरकार बे-फिक्री से खादी को गैर-क़ानूनी घोषित कर सके। हर एक उदार आन्दोलन का राजनैतिक उपयोग हो सकता है, मगर इसलिए उसके उदार पहलू का भी बहिष्कार करना अनुचित होगा। मगर यह कहना भी उचित होगा कि केवल इस महिला डाक्टर के बतलाये राजा

ही नहीं, बल्कि और कई लोग भी खादी का समर्थन करने या मेरे जैसे सार्वजनिक सेवकों के प्रति सामान्य शील दिखलाने में डरते हैं।

इतना तो अच्छा है कि इस बहिष्कार की बदौलत यह भेंट मिली। मगर उन सभी बहिनों को जिनकी नज़र से यह लेख गुज़रे मैं कहूँगा कि वे भूखों मरनेवाले करोड़ों देश-बन्धुओं के प्रति अपने कर्त्तव्य पर विचार करने के लिए किसी ऐसे अवसर की ही खोज में बैठी न रहें। निश्चय ही, इतना समझना तो काफी सहज है कि जब तक देश मे करोड़ों आदमी भोजन बिना भूखे रहते हों, तब उन्हे अपना शरीर सजाने या गहने वाली होने के संतोष के लिए ही, गहने रखने का कोई अधिकार नहीं है। जैसा कि मैं पहले भी इन पृष्ठों में कह चुका हूँ, अगर केवल हमारी धनी बहनें ही अपनी फ़ज़ूलियात छोड़ देवें और उसी सजावट से संतुष्ट रहें जो कि खादी उन्हे दे सके तो केवल एक इसी से सारा खादी आन्दोलन चलाया जा सकता है, और हिन्दुस्तान की धनी बहनो के इस काम का जो महान् नैतिक असर राष्ट्र पर और विशेष कर भूखों मरने वाले करोड़ों आदमियों पर पड़ेगा, उसका तो हिसाब ही अलग है।

—:o:—

पर्दे की कुप्रथा

कोई बात प्राचीन है इसलिए वह अच्छी है ऐसा मानने से बहुत गलतियाँ होती हैं। यदि प्राचीन बाते सब अच्छी ही होतीं तो पाप भी कम प्राचोन नही है, परन्तु कितना ही प्राचीन होते हुए भो पाप त्याज्य ही रहेगा। अस्पृश्यता प्राचीन है, परन्तु पाप है इसलिए वह सर्वथा त्याज्य है। शराब-खोरी, जुआ इत्यादि प्राचीन हैं परन्तु पाप हैं इसलिये वे त्याज्य हैं। जिसकी योग्यता हम बुद्धि से सिद्ध कर सकते हैं और जो बुद्धि-ग्राह्य हैं, उसे यदि बुद्धि कबूल न करे तो वह शीघ्र छोड़ने योग्य है। पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि उसको-कबूल नहीं कर सकती है। पर्दे से होने वाली हानि स्वयं सिद्ध है। बहुत सी बातो का अर्थ किया जाता है, पर्दे का कोई आदर्श अर्थ करके उसका समर्थन नहीं करना चाहिए। जिस हालत मे आज हम पर्दे को पाते हैं, उसका समर्थन करना असम्भव है।

सच्ची बात तो यह है कि पर्दा बाह्य वस्तु नहीं है, आन्तरिक है। बाह्य-पर्दा ने वाली कितनी ही स्त्रियां निर्लज्जा पाई जाती हैं। जो बाह्य-प नहीं करती, परन्तु आन्तरिक लज्जा जिसने

कभी नहीं छोड़ी है वह स्त्री पूजनीया है, और ऐसी स्त्रियां आज भी जगत मे मौजूद हैं।

प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसी भी बातें हम पाते हैं, जिनका पहले बाह्य अर्थ किया जाता था। और अब आन्तरिक अर्थ किया जाता है। परन्तु पाशवी-वृत्तियो को जलाना शुद्ध यज्ञ है। ऐसे सैकड़ो उदाहरण मिल सकते हैं, इसलिए जो लोग हिन्दू जाति का सुधार और रक्षा करना चाहते हैं, उनको प्राचीन दृष्टान्तों से डरने की आवश्यकता नहीं है। नये सिद्धान्त प्राचीन सिद्धान्तो से बढ़ कर नही मिलते, परन्तु उन सिद्धान्तों पर अमल करने मे नित्य परिवर्तन उन्नति का एक लक्षण है, स्थिरता अवनति का आरम्भ काल है। जगत् नित्य गतिमान, स्थिरता मृत्यु का लक्षण है। यहां योगी की स्थिरता की बात नहीं, योगी की स्थिरता मे तीव्र-तम गति है। उस स्थिरता में आत्म-जाग्रति है किन्तु यहां जड़ स्थिरता की बात है, इसका दूसरा नाम जड़ता कहा जा सकता है। जड़ता के वश होकर हम सब प्राचीन कुप्रथाओ का समर्थन करने को उत्सुक हो जाते हैं। यह हमारी जड़ता हमारी उन्नति को रोकती है। यही जड़ता हमारे स्वराज्य की प्राप्ति मे रुकावट डालती है।

अब पर्दे से होने वाली हानियों को देखें—

१—स्त्रियो की शिक्षा मे पर्दा बाधा डालता है।

२—स्त्रियो की भीरुता को बढ़ाता है।

३—स्त्रियो के स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

४—स्त्रियो और पुरुषो के बीच में स्वच्छ (शुद्ध) सम्बन्ध को रोकता है।

५—स्त्रियो की नीच-वृत्ति का पोषक बनता है।

६—पर्दा स्त्रियों को बाह्य जगत से दूर रखता है इसलिये वे उसके योग्य अनुभव से वंचित रहती हैं।

७—अर्धाङ्गिनी के सहचरी-धर्म में पर्दा बाधा डालता है।

८—पर्दानशीन स्त्रियां स्वराज्य प्राप्ति के कामो मे अपना पूरा हिस्सा हरगिज नही ले सकती हैं।

९—पर्दे से बाल-शिक्षा मे रुकावट होती है।

इन सब हानियो को देखते हुए विचार शील सब हिन्दुओं का यह धर्म है कि वे पर्दे को तोड़ने दें। पर्दा तोड़ने और दूसरे सुधारो का सब से सरल इलाज इन सुधारो को स्वयं आरम्भ कर देना है। हमारे कार्यों का अच्छा परिणाम देख कर दूसरे अपने आप उसका अनुकरण करेंगे। एक बात का खयाल अत्यन्त आवश्यक है कि सुधारक कभी विनय और मर्यादा का त्याग नही करेगा। पर्दा तोड़ने मे सयम की आवश्यकता है और इसीलिए उसका तोडना कर्त्तव्य है और वह टूट सकता है। पर्दा तोड़ने में स्वच्छन्दता भी हेतु हो सकती है, ऐसी अवस्था मे पर्दा टूट नही सकता क्योंकि तब जनता मे क्रोध पैदा होगा और क्रोध के वश होकर जनता बुद्धि का त्याग करके कुप्रथा का भी समर्थन करने लगेगी। जनता का हृदय पवित्र है, इस कारण अपवित्र हेतु का जनता कभी आदर नही करेगी। (नव जीवन)

स्त्रियों का स्थान

एक बहन, जो अब तक स्वेच्छा से कुमारी रही हैं, लिखती हैं—

" कल मलाबारी भवन मे स्त्रियो की एक सभा हुई थी, जिसमे अनेक भाषण दिये गए और प्रस्ताव भी पास हुए थे। विचारणीय विषय ' शारदा बिल ' था। लड़कियों को ब्याहने के सम्बन्ध में कम से कम अठारह वर्ष उम्र के आप पक्षपाती है, यह जान कर हमे प्रसन्नता हुई है। इस सभा मे एक और दूसरा महत्त्व का प्रस्ताव विरासत सम्बन्धी कानून का था। इस विषय पर आप " यंग इंडिया " अथवा " नव जीवन " में एक बड़ा लेख लिखें तो वह हमारे लिए अनेक रूप में सहायक होगा।

मुझे तो यह समझ ही नहीं पड़ता कि अपने जन्म-सिद्ध अधिकार वापिस पाने के लिए हमें भीख क्यो मांगनी पड़े? पुरुषो का अपनी जननी को ' अबला ' कहना और स्त्रियो के छिपे हुए अधिकार उन्हे वापिस देते समय उदारता का स्वांग करते हुए बड़ी-बड़ी बातें बघारना, कितना विचित्र,

दुःखद और हास्य-जनक है! जिन अधिकारों को पुरुषों ने अन्याय-पूर्वक, एकमात्र अपने पशु-बल द्वारा स्त्रियों से छीना है, उन्हे वापिस लौटाने मे कौन उदारता और बहादुरी है! स्त्री पुरुष से किस बात मे घटकर है, कि जिसके कारण विरासत मे उसका हिस्सा पुरुष से कम हो? वह बराबर क्यो न होना चाहिए?

दो एक दिन पहले हम उस विषय पर खूब जोरों से विचार कर रही थीं। एक बहन ने कहा, हम कानून मे परिवर्त्तन नही चाहती, हम अपनी वर्त्तमान दशा से सतुष्ट हैं। लड़का कुटुम्ब के परम्परागत रीति-रस्मो और उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा करता है, कुटुम्ब का आधार भी वही होता है। अतएव न्यायतः विरासत का अधिकांश उसी को मिलना चाहिए। इसी समय पास ही खड़ा हुआ एक नवयुवक बोल उठा—लड़की की चिन्ता आप क्यो करती है, उसका पति उसकी रक्षा कर लेगा। बस जहां-तहां यही एक पुकार है—"पति, पति" यह 'पति' तो एक महान विपत्ति हो पड़ा है। पता नहीं स्त्रियों के लिए क्यो, यह अनिवार्य अंग समझा जाता है? और कन्या के सम्बन्ध मे तो लोग इस ढंग से बातें करते है, मानो वह धन की कोई पोटली हो। मां-बाप तभी तक उसकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते है, जब तक उसका वह 'पति' आकर उसे अपने अधिकार मे नही ले लेता। उसके बाद तो मानो मां-बाप लडकी की रक्षा के भार से अपने को मुक्त समझ

बैठते हैं। सचमुच ही अगर आप लड़की के रूप में पैदा हु होते तो यह सब देखकर आपका खून खौल उठता।"

पुरुष स्त्री-जाति पर जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हे दे. कर खून खौलने के लिये मुझे लड़की के रूप में पैदा होने की आवश्यकता नही है। मेरे विचार में, विरासत सम्बन्धी कानून इन अत्याचारों की दृष्टि से नगण्य है। शारदा बिल जिस गंदगी को दूर करने का प्रयत्न करता है, वह गन्दगी विरासत सम्बन्धी अत्याचारो से कहीं अधिक भयकर और गंभीर है, लेकिन स्त्रियों के बारे मे, मैं जरा भी झुकने को तैयार नहीं हूँ। मतानुसार क़ानून को स्त्री और पुरुष के बीच किसी भी प्रकार की असमानता नहीं रखनी चाहिये। लड़के और लड़की के बीच किसी तरह का भेद-भाव न होना चाहिए। जैसे-जैसे स्त्री-जाति को शिक्षा द्वारा अपनी शक्ति का भान होता जायगा, वैसे-वैसे उसके साथ आज जो असमान व्यवहार किया जाता है उनका अधिकाधिक उग्र विरोध होगा। लेकिन पक्षपात से भरे क़ानूनो के सुधार से इस स्थिति मे बहुत थोड़ा परिवर्त्तन हो सकता है। जैसा कि लोग समझते है, उससे कहीं गहरी जड़ इस व्याधि की है। पुरुष का सत्ता और कीर्त्ति के लिये लोलुप होना इसका मूल कारण है, और इससे भी बढ़ कर कारण स्त्री-पुरुष की परस्पर विषय-वासना है। दूसरे पुरुष मरने के बाद अपनी मानी हुई अमरता की भी अपेक्षा रखता है, अतएव अगर सब सन्तानों में समान रूप

से सम्पत्ति का बटवारा किया जाय तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाय और इस कारण पुरुष का नाम अमर न रह सके, इसी भय से बड़े लड़के को सारी सम्पत्ति नहीं, तो उसका बड़ा भाग विरासत में अवश्य मिलना चाहिये, इस आशय का कानून बना है।

यहां यह भूलना न चाहिये कि ज्यादहतर स्त्रियां विवाहिता होती हैं और कानून के उनके विरुद्ध होते हुये भी वे अपने पतियों की सत्ता और अधिकार में पूरी तरह हाथ बटाती हैं, तथा अपने को अपने श्रीमान् पतियों की श्रीमती अमुक कहलाने में आनन्द और गर्व का अनुभव करती हैं। अतएव सैद्धान्तिक चर्चा के समय पक्षपात-भरे कानूनों के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्त्तनों के लिए भले ही वे अपना मत दें, लेकिन जब तदनुसार आचरण का अवसर आता है तब वे अपनी सत्ता और अपने अधिकार को छोड़ना नहीं चाहतीं।

इस कारण यद्यपि मैं इस बात का हमेशा से समर्थक रहा हूँ कि स्त्री-जाति पर से कानून के सारे बन्धन हटा लिए जाने चाहिये, तथापि जबतक भारत की पढ़ी-लिखी-सुशिक्षिता बहिनें व्याधि के मूल कारण को मिटाने के लिये प्रयत्न नहीं करतीं तब तक ज़रा मुश्किल है। मैं उनसे नम्रता-पूर्वक-प्रार्थना करता हूँ कि वे इसके लिए प्रयत्न करें। मेरे मत से तो, स्त्री त्याग और तपश्चर्या की साक्षात् मूर्ति है। सार्वजनिक जीवन

में उसके प्रवेश से दो फल लगने चाहिए; एक वायु-मण्डल की पवित्रता और दूसरा, पुरुष के सम्पत्ति-संग्रह के लोभ-पर अंकुश का रहना। उन्हें जानना चाहिए कि लाखों के पास तो विरासत में छोड़े जाने योग्य कोई सम्पत्ति ही नहीं होती। इन लाखों श्रीमन्त वर्ग की स्त्रियों को यह सीखना चाहिए कि सम्पत्ति की विरासत स्वेच्छा से छोड़ने और अपने उदाहरण द्वारा दूसरों से छुड़ाने में ही उनका श्रेय है। माता-पिता अपनी संतान को स्वावलम्बी बनायें, जिससे खुद मेहनत करके वे पवित्र जीवन बिता सकें। बड़े वारिस को अपने से छोटे भाई-बहनों के पालन पोषण का भार स्वयं उठा लेना चाहिए। अगर धनिक वर्ग के लोग अपने बच्चों को स्वावलम्बन की शिक्षा देने लग जांय और उन्हें सम्पत्ति की विरासत के गुलाम बनाने वाले मिथ्या मोह से बचा लें, जिसके कारण वे व्यसनी, उत्साहहीन और निर्वीर्य जीवन बिताने में प्रवृत्त होते हैं, तो जो निस्तेजता और बुद्धिहीनता आज उनकी सन्तान में पाई जाती है, वह बहुत कुछ दूर हो जाय। युगों से चली आई हुई इस पुरानी गन्दगी को नष्ट-भ्रष्ट करना सुशिक्षिता स्त्रियों का ही धर्म है।

पारस्परिक विषय वासना ने स्त्री जाति की पराधीनता को जिस हद तक पहुँचाया है, उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता न होना चाहिए। स्त्री ने कई सूक्ष्म तरीकों से अपनी आकर्षण शक्ति का उपयोग पुरुष से अप्रत्यक्ष रूप से उसकी सत्ता छीन

लेने के लिए किया है। पुरुष उसके इस प्रयत्न को निष्फल करने की सदा कोशिश करता रहा है, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली। फल स्वरूप यह कहना अनुचित न होगा कि दोनों के दोनों गड़हे मे गिरे हैं। इस गम्भीर परिस्थिति को सुलझाने का प्रयत्न भारतवर्ष की सुशिक्षिता बहनों को करना चाहिए। पाश्चात्य रीति-रस्मो की नक़ल करने से, जो हमारी परिस्थिति के प्रतिकूल हैं, हम इस समस्या को हल नहीं कर सकेंगे। हमें भारत की परिस्थिति और अपने राष्ट्रीय स्वभाव के अनुकूल उपायो की योजना करनी चाहिए। बहनों का कर्त्तव्य है कि वे वातावरण शुद्ध रखें, अपने निश्चयों को दृढ़ और अटल बनावे, दिङ्मूढ़ता के दोष से बचें, अपनी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोत्तम तत्व का पोषण करें और उसके दोषों को दूर करे। यह काम सीता, द्रौपदी, सावित्री, दमयन्ती आदि के समान प्रातः स्मरणीय सतियो के जन्म धारण करने से ही हो सकता है; धांधलेबाजी से या अधिकाधिक आकर्षक बनने से कदापि नहीं हो सकता।

(नवजीवन)

जटिल प्रश्न

एक महिला, जिन्हे मेरी बुद्धिमत्ता और सचाई मे कुछ विश्वास है, मुझसे चन्द पेचीदा सवाल पूछती हैं। मुझे उनके उत्तर टाल जाने मे ख़ुशी होती, क्योंकि मुझे इस बात का भय है कि कहीं कही अपने स्वत्वो की चिन्ता करने वाले कुछ पति क्रुद्ध होकर वाद विवाद न छेड़ बैठे, लेकिन शायद ऐसे पति मुझ पर दया ही बनाये रहेंगे, क्योंकि वे जानते हैं, कि मैं स्वयम् भी इस कोटि के पतियों मे से हूँ और मैंने बीच, मे कुछ खटपट के हो जाते हुए भी चालीस वर्ष सुखी दाम्पत्य-जीवन में काटे हैं।

पहला प्रश्न मौजूँ और मौके का है। इन प्रश्नों की मूल भाषा मराठी है मैंने उसका स्वतन्त्र अनुवाद ही दिया है।

१—क्या किसी पुरुष या स्त्री को राम नाम के उच्चारण मात्र से, राष्ट्रीय सेवा मे भाग लिए बिना ही आत्म-दर्शन प्राप्त हो सकता है ? मैंने यह प्रश्न इसलिए पूछा है, कि मेरी कुछ बहिने यह कहा करती हैं, कि हमको गृहस्थी के काम-काज करने तथा यदाकदा दीन दुःखियों के प्रति दया भाव दिखाने के अतिरिक्त और किसी काम की जरूरत नहीं है।

इस प्रश्न ने केवल स्त्रियो को ही नहीं, बल्कि बहुतेरे पुरुषों को भी उलझन में डाल रक्खा है और मुझे भी इसने धर्म संकट मे डाला है। मुझे यह बात मालूम है कि कुछ लोग इस सिद्धान्त के मानने वाले हैं कि काम करने की क़तई जरूरत नहीं है और परिश्रम मात्र व्यर्थ है। मै इस ख्याल को बहुत अच्छा तो नही कह सकता, अलबत्ता अगर मुझे उसे स्वीकार करना ही हो तो मैं उसके अपने ही अर्थ लगाकर स्वीकार कर सकता हूँ। मेरी नम्र सम्मति यह है कि मनुष्य के विकास के लिये परिश्रम करना अनिवार्य है। वह जरूरी है बिना इस बात के ख्याल के कि उसका फल क्या मिलेगा? राम नाम या कोई ऐसा ही पवित्र नाम जरूरी है—महज लेने के लिये ही नहीं, बल्कि आत्म-शुद्धि के लिये, प्रयत्नो को सहारा पहुंचाने के लिए और ईश्वर के सीधे दर्शन पाने के लिए। इसलिए राम नाम-उच्चारण कभी परिश्रम के बदले काम नहीं दे सकता, वह तो परिश्रम को अधिक बल युक्त बनाने और उसे उचित मार्ग पर ले चलने के लिए है। यदि परिश्रम-मात्र व्यर्थ ही है, तब फिर घर-गृहस्थी की चिन्ता क्यों? और दीन दुःखियो को यदा कदा सहायता किसलिये? इस प्रयत्न में सेवा का सभी अँकुर मौजूद है। और मेरे लेखे राष्ट्रसेवा मानव-जाति की सेवा है। यहां तक कि कुटुम्ब की निर्लिप्त भाव से की गई सेवा को भी मैं मानव जाति की सेवा मानता हूं।

इसप्रकार की कौटुम्बिक सेवा राष्ट्र-सेवा की ओर अवश्य

ले जाती है। राम नाम से मनुष्य में निर्मोह और समता आती है, और राम नाम आपत्तिकाल में उसे कभी धर्मच्युत नहीं होने देता। ग़रीब से ग़रीब लोगों की सेवा किये बिना या उनके हित मे अपना हित माने बिना मोक्ष पाना मैं असम्भव मानता हूँ।

दूसरा प्रश्न यह है—हिन्दू धर्म में पति परायणता और पति के प्रति पत्नी का सम्पूर्ण आत्म-समर्पण ही सर्वोच्च आदर्श माना गया है। ख्वाह पति एक राक्षस हो या साक्षात् प्रेम का अवतार, यदि पत्नी के लिए यही सही रास्ता है, तो क्या वह पति के विकट विरोध के होते हुए भी राष्ट्रीय सेवा का काम हाथ मे ले सकती है या उसका धर्म अपने पति की बतलाई हुई सीमा के अन्दर ही काम करना है?

सीता को मैं आदर्श पत्नी और राम को आदर्श पति मानता हूँ। लेकिन सीता राम की गुलाम नहीं थी और न राम सीता के। राम सीता का बहुत अधिक ख्याल रखते थे। जहां सच्चा प्रेम होता है वहां इस प्रकार का प्रश्न, जैसा कि पूछा गया है, उठता ही नहीं है और जहां सच्चे प्रेम का अभाव होता है, वहां बन्धन कभी रहा ही नही।

आजकल की हिन्दू गृहस्थी एक अनूठी पहेली है। पति और पत्नी (विवाहित हो जाने से पूर्व) एक दूसरे के बारे मे बिलकुल नहीं जानते। शास्त्राज्ञा, रिवाज तथा विवाहित दम्पतियों का निष्कण्टक जीवन—ये चीजे अधिकांश हिन्दू घरों में शान्ति

बनाये रहती हैं। लेकिन जब पत्नी और पति के विचार साधारणतः प्रचलित विचारों से भिन्न होते हैं, तब खटपट का भय रहता है? पति की बात तो यह है कि वह अपने को निरंकुश समझता है। वह अपने को इस बन्धन से मुक्त मानता है कि उसे अपनी जीवन-सहचरी की सलाह लेनी चाहिये। वह अपनी भार्या को अपनी मिलकियत मानता है, और बेचारी पत्नी जो कि पति को "सर्वस्व" होने पर विश्वास करती है, प्रायः उस जब्र को सहन कर लेती है। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति से उबरने का रास्ता है। मीराबाई ने रास्ता दिखा दिया है। जब पत्नी अपने को गलती पर न समझे और जब कि उसका उद्देश्य अधिक पवित्र हो, तब उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने मन का रास्ता अख्तियार कर ले, और नम्रता और धैर्य के साथ परिणाम का सामना करे।

तीसरा प्रश्न यह है—यदि किसी स्त्री का पति मांसाहारी हो, और वह स्त्री मांस भक्षण को बुरा समझती हो तो क्या वह अपने मन में जमा की हुई बात कर सकती है? और क्या प्रेममय उपायो से अपने पति का मांसाहार या उसी तरह की कोई बुरी आदत छुड़ाने का प्रयत्न करे? या उस पत्नी का फर्ज यह है कि अपने पति के लिये मांस पकानें और जो कि उससे भी बुरी बात है क्या वह उसे पति के कहने पर स्वयं खाने के लिये बाध्य है? अगर आप कहे कि पत्नी अपने मन के अनुसार काम करे तो संयुक्त गृहस्थी उस सूरत में

क्यों कर चल सकती है जब कि घर में एक तो मजबूर करे और दूसरा हुक्म उदूल हो ?

इस प्रश्न का कुछ उत्तर दूसरे प्रश्न मे आ गया है पति के गुनाहो मे पत्नी का साथी बनना लाज़िम नहीं है और जब पत्नी किसी बात को बुरा समझती है, तब उसमें सही रास्ते पर चलने की हिम्मत होनी ही चाहिये। लेकिन यह विचारते, हुए कि गृहिणी का काम तो घर का काम काज सम्हालना और इसलिए खाना पकाना भी है—ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार पति का कर्त्तव्य कुटुम्ब के लिये धन कमाना है, उस पर मांस पकाना उस हालत मे लाज़िम है, जब कि पहले दोनो गोश्त खाते हैं। और अगर किसी शाकाहारी कुटुम्ब में पति मांसाहारी बन जाय और अपनी पत्नी को गोश्त पकाने के लिये मजबूर करने की कोशिश करे, तो पत्नी पर यह बाध्य नही है, कि वह ऐसी चीज़ पकावे जो उसके कर्त्तव्य भाव के प्रतिकूल हो।

घर मे शान्ति अभीष्ट वस्तु है लेकिन यह स्वयम् ध्येय नहीं हो सकती है। मेरे लिये तो विवाहित अवस्था भी संयम की ठीक वैसी ही सूरत है जैसा कि अन्य कोई जीवन कर्त्तव्य है। विवाहित जीवन का अभिप्राय यह है कि पारस्परिक लाभ इस संसार मे भी हो और बाद के लिये भी। वह मानवजाति की सेवा के लिये भी है। जब एक फरीक आत्मसंयम के नियमों का उल्लँघन करता है, तब दूसरे का हक हो जाता है कि वह

उस बंधन को तोड़ दे। यहां नैतिक उल्लंघन से तात्पर्य है, न कि शारीरिक से। इसमें तलाक शामिल नहीं है।

पत्नी या पति भले ही अलग हों—लेकिन उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जिसके निमित्त वे विवाहित हुये थे। हिन्दू-धर्म पति-पत्नी में से प्रत्येक को एक दूसरे के बिलकुल समान मानता है। इसमें शक नहीं कि रिवाज कुछ और ही पड़ गया है—सो भी न मालूम कब से! लेकिन इसी प्रकार और कई दोष भी तो हिन्दू समाज में घुस आये हैं।

यह मैं जरूर जानता हूं कि हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष पाने के हेतु चाहे जिस मार्ग का अनुसरण करने की पूरी स्वतंत्रता देता है।

(यङ्ग इण्डिया)

यह सुधार है ?

एक लेखक जिन्हें मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ, इस प्रकार लिखते हैं।

"बार-बार मन मे यही सवाल होता है कि क्या प्रचलित नीति प्राकृतिक नीति है ? आपने नीति धर्म की पुस्तक लिख कर प्रचलित नीति का समर्थन किया है। क्या यह प्रचलित नीति कुदरती है ? मेरा तो यह ख्याल है कि वह कुदरती नहीं है। क्योंकि वर्त्तमान नीति के कारण ही मनुष्य विषय में पशु से भी अधिक बन गया है। आजकल की नीति की मर्यादा के कारण सन्तोष जनक विवाह शायद ही कही होता होगा। 'नहीं होता है' यह कहूं तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। जब विवाह का नियम न था उस समय कुदरत के नियमों के अनुसार स्त्री और पुरुषो का समागम होता था और वह समागम सुख रूप होता था। आज नीति के बन्धनो के कारण वह समागम एक प्रकार का दुःख हो गया है। इस दुःख मे सारा जगत् फँसा हुआ है और फँसता ही जा रहा है।

अब नीति कहेगे किसे ? एक की नीति दूसरे की अनीति

होती है। एक धर्म एक पत्नी के साथ विवाह होना स्वीकार करता है। दूसरा अनेक पत्नी की इजाज़त देता है। कोई काका, मामा के सन्तानों के साथ विवाह सम्बन्ध को त्याज्य मानते है तो कोई उसके लिए इजाज़त भी देते हैं। इसमें नीति क्या समझनी चाहिए। मैं तो यह कहता हूँ कि विवाह एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है, उसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। पुराने ज़माने के महापुरुषों ने देशकालानुसार नीति की व्यवस्था की थी।

अब इस नीति के कारण जगत् की कितनी हानि हुई है, इसकी जांच करें।

१—प्रमेह (सूजाक) उपदंश (गरमी) इत्यादि रोग उत्पन्न हुए। पशुओं मे ये रोग नहीं होते है। क्योंकि उनमे प्राकृतिक समागम होता है।

२—बालहत्याएं हुईं। यह लिखने मे मेरा हृदय कांप उठता है। केवल इस नीति के नियम के कारण ही तो एक कोमल हृदय की माता क्रूर बनकर अपने बालक का गर्भ मे या उसके गर्भ के बाहर आने पर नाश करती है।

३—बाल-विवाह, वृद्ध पति के साथ छोटी उम्र की लड़कियों का विवाह इत्यादि पसन्द न करने योग्य समागमो का होना। ऐसे समागमो के कारण ही आज संसार और उसमे विशेष कर भारतवर्ष दुर्बल बना हुआ है।

४—ज़र जन और ज़मीन के तीन प्रकार के झगडों मे भी

(ज्ञन) जोरू के लिए किए गए झगड़ों को प्रथम स्थान प्राप्त है। ये भी वर्तमान नीति के कारण ही होते हैं।

उपरोक्त चार कारणों के सिवा दूसरे कारण भी होंगे। यदि मेरी दलील ठीक है तो क्या प्रचलित नीति मे कोई सुधार नहीं किया जाना चाहिये।

ब्रह्मचर्य को आप जानते हैं यह ठीक ही है। परन्तु ब्रह्मचर्य राज़ी खुशी का होना चाहिए ज़बर्दस्ती का नही। और हिन्दू लोग लाखो विधवाओं से ज़बर्दस्ती ब्रह्मचर्य का पालन कराते हैं। इन विधवाओ के दुःखो को तो आप जानते ही है। आप यह भी जानते है कि इसी कारण से बालहत्याये होती हैं। तो आप पुनर्विवाह के लिए एक बड़ी हलचल करें तो क्या बुरा हो! उसकी आवश्यकता भी कुछ कम नहीं है। आप उसके प्रति जितना चाहिए, उतना ध्यान क्यों नहीं दे रहे हैं?"

मै यह ख्याल करता हूं कि लेखक ने ऊपर जो प्रश्न पूछे है, इस विषय पर मुझ से कुछ लिखाने के लिए ही पूछे है। क्योंकि ऊपर के लेख मे जिस पक्ष का समर्थन किया गया है उसका लेखक महाशय स्वयं ही समर्थन करते हो तो इसकी मुझे कभी बू तक नहीं मिली है। परन्तु मैं यह जानता हूँ कि उन्होंने जैसे प्रश्न पूछे हैं वैसे प्रश्न आजकल भारत वर्ष मे भी हो रहे हैं। उसकी उत्पत्ति पश्चिम मे हुई है, और विवाह को पुरानी, जङ्गली और अनीति की वृद्धि करने वाली प्रथा मानने वालो की संख्या पश्चिम मे कुछ कम नहीं है। शायद वह संख्या और भी बढ़ रही

होगी। विवाह को जङ्गली साबित करने के लिए पश्चिम में जो दलीलें की जाती हैं उन सब दलीलों को मैंने नहीं पढ़ा है। परन्तु लेखक ने जैसी दलीले दी हैं वैसी ही वे दलीले हों तो मेरे जैसे पुरान प्रिय (अथवा यदि मेरा दावा क़बूल कर लिया जावे तो सनातनी) को उनका खण्डन करने मे कोई मुश्किल या पशोपेस न होगा।

मनुष्य की तुलना पशु के साथ करने मे ही गलती होती है। मनुष्य के लिए जो नीति और आदर्श रक्खे गये है वे बहुत अंश में पशुनीति से जुदा परन्तु उत्तम हैं और यही मनुष्य की विशेषता है। अर्थात कुदरत के नियमो का जो अर्थ पशु-योनि के लिए किया जा सकता है वह मनुष्य योनि के लिए हमेशा नहीं किया जा सकता। ईश्वर ने मनुष्य को विवेक शक्ति दी है। पशु केवल पराधीन है। इसलिए पशु के लिए स्वतन्त्रता अथवा अपनी पसन्दीदगी जैसी कोई चीज़ नहीं है। मनुष्य की अपनी पसन्द होती है। वह सार असार का विचार कर सकता है और उसके स्वतन्त्र होने से उसे पाप पुण्य भी लगता है। और जहां उसकी पसन्दीदगी रक्खी गई है वहां उसे पशु से भी अधम बनने का अवकाश भी रहता है। उसी प्रकार यदि वह अपने दिव्य स्वभाव के अनुकूल चले तो वह आगे भी बढ़ सकता है। जङ्गलियो मे भी जङ्गली दिखाने वाली क़ौमों में भी थोड़े बहुत अशों मे विवाह का अकुश होता है। यदि यह कहा जाय कि यह अकुश रखने में ही जङ्गलीपन है

क्योंकि पशु किसी अंकुश के वश नहीं होते हैं, तो उसका परिणाम यह होगा कि स्वच्छन्दता ही मनुष्य का नियम बन जायगा। परन्तु यदि सब मनुष्य चौबीस घण्टे तक भी स्वेच्छाचारी बन कर रहें तो सारे जगत का नाश हो जायगा न कोई किसी की मानेगा न सुनेगा; स्त्री और पुरुष मे मर्यादा का होना अधर्म गिना जायगा और मनुष्य का विकार तो पशु के बनिस्बत कहीं अधिक होता है। इस विकार की लगाम ढीली कर दी कि उसके वेग से उत्पन्न होने वाली अग्नि ज्वालामुखी की तरह भभक उठेगी और संसार को एक क्षण मात्र में भस्म कर देगी। थोड़ा सा विचार करने पर यह मालूम होगा कि मनुष्य इस संसार में दूसरे अनेक प्राणियों पर जो अधिकार प्राप्त किये हुये हैं वे केवल सयम, त्याग और आत्म बलिदान, यज्ञ और कुरबानी के कारण ही प्राप्त किये हुये हैं।

उपदंश, प्रमेह, इत्यादि का उपद्रव विवाह के नियमों का भग करने से और मनुष्य के पशु न होने पर भी उसके पशु का अनुकरण करने में दोषी बन जाने से ही होता है। विवाह के नियमों का पालन करने वाले ऐसे एक भी शख्स को मैं नहीं जानता हूँ कि जिसे इन भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ा हो जहां जहां ये रोग हुए हैं वहां वहां अधिकांश में विवाह नीति का भग करने से ही हुये हैं अथवा उस नीति का भंग करने वालो के स्पर्श से ही हुये है। वैद्यक शास्त्र से भी यह बात सिद्ध होती है। बाल-विवाह और बाल-हत्या का निर्दय रिवाज इस विवाह

नीति के कारण नहीं, परन्तु विवाह नीत्ति के भंग से ही उस रिवाज की उत्पत्ति हुई है। विवाह नीति तो यह कहती है कि जब पुरुप अथवा स्त्री योग्य वय के हों, उन्हें प्रजोत्पत्ति की इच्छा हो, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो तभी वे अमुक मर्यादा का पालन करते हुये अपने लिए योग्य पत्नी या पति ढूंढ़ लें अथवा उनके माता पिता प्रबन्ध कर दें। जो साथी ढूंढा जाय उसमे भी आरोग्यता इत्यादि के गुणों का होना आवश्यक है। इस विवाह नीति का पालन करने वाले मनुष्य, ससार में चाहे कही भी जाओ और देखो सुखी ही दिखाई देंगे। जो बात वाल-विवाह के सम्बन्ध में है वही वैधव्य के सम्बन्ध मे भी है। विवाह नीति के भग से ही दुःख रूप वैधव्य उत्पन्न होता है। जहां विवाह शुद्ध होता है वहां वैधव्य अथवा विधुरता सहज सुख रूप और शोभा रूप होती है। जहां ज्ञानपूर्वक विवाह सम्बन्ध जोड़ा गया है वहां सम्बन्ध केवल' दैहिक नही होता, वह आत्मिक हो जाता है और देह छूट जाने पर भी आत्मा का सम्बन्ध भुलाया नहीं जा सकता है। जहां इस सम्बन्ध का ज्ञान है वहां पुनर्विवाह असंभव है, अयोग्य और अधर्म है। जिस विवाह में उपरोक्त नियमो का पालन नही होता है, उस विवाह के सम्बन्ध को विवाह का नाम नही दिया जाना चाहिये। और जहां विवाह नहीं होता है वहां वैधव्य अथवा विधुरता जैसी कोई चीज ही नहीं होती है। यदि हम ऐसे आदर्श विवाह बहुत होते हुए नहीं देखते हैं तो उससे विवाह की प्रथा को नाश

करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। हां उसे उत्तम आदर्श के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करने के लिए वह एक सबल कारण अवश्य हो सकता है।

सत्य के नाम से असत्य का प्रचार करने वालों की संख्या को देख कर यदि कोई सत्य का ही दोष निकाले और उसकी अपूर्णता सिद्ध करने का प्रयत्न करे तो हम उसे अज्ञानी कहेंगे। उसी प्रकार विवाह के भंग के दृष्टान्तों से विवाह नीति की निंदा करने का प्रयत्न भी अज्ञान और अविचार का ही चिह्न है।

लेखक महाशय कहते हैं कि विवाह का धर्म या नीति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, वह एक रूढ़ि अथवा रिवाज़ है और धर्म और नीति के विरुद्ध है। इसलिए उठा लेने के योग्य है। मेरी अल्प मति के अनुसार तो विवाह धर्म की मर्यादा है और उसे यदि उठा दिया जायगा तो संसार मे धर्म जैसी कोई चीज़ ही न रहेगी। धर्म की जड़ ही संयम अथवा मर्यादा है। जो मनुष्य संयम का पालन नही करता है वह धर्म को क्या समझेगा? पशु के बनिस्बत मनुष्य में बहुत ही अधिक विकार होता है। दोनों मे जो विकार हैं उनकी तुलना ही नहीं की जा सकती। जो मनुष्य विकारों को अपने वश मे नहीं रख सकता है वह मनुष्य ईश्वर को पहचान ही नहीं सकता है। इस सिद्धान्त के समर्थन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि जो लोग ईश्वर का अस्तित्व अथवा आत्मा और देह की भिन्नता

को स्वीकार नहीं करते हैं उनके लिए विवाह के बन्धन की आवश्यकता को सिद्ध करना बड़ा ही मुश्किल काम है। परन्तु जो आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते है और उसका विकास करना चाहते हैं। उन्हे यह समझाने की कोई आवश्यकता न होगी कि देह का दमन किए बिना आत्मा की पहचान और उसका विकास असम्भव है। देह या तो स्वच्छंद का भोजन होगा अथवा आत्मा की पहचान करने के लिए तीर्थक्षेत्र होगा । यदि वह आत्मा की पहचान करने लिए तीर्थक्षेत्र है तो स्वेच्छाचार के लिए उसमे कोई स्थान ही नही है। देह को प्रतिक्षण आत्मा के वश मे लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

जर, जन और ज़मीन ये तीनो वहीं झगड़े का कारण है जहां सयम धर्म का पालन नहीं होता है। विवाह की प्रथा को जितने अंशो से मनुष्य आदर की दृष्टि से देखते हैं उतने अंशो मे स्त्री झगड़े का कारण होने से बच जाती है। यदि पशु की तरह प्रत्येक स्त्री पुरुष भी जहां जैसा चाहे वैसा व्योहार रख सकते होते तो मनुष्यो मे बड़ा झगड़ा होता और वे एक दूसरे का नाश करते। इसलिए मेरा तो यह दृढ़ निश्चय है कि जिस दुराचार और जिन दोषों का लेखक ने उल्लेख किया है उनकी औषध विवाह धर्म का छेदन नहीं है परन्तु विवाह धर्म का सूक्ष्म निरीक्षण और पालन है।

यह सच है कि किसी जगह रिश्तेदारों में विवाह सम्बन्ध

जोड़ने की स्वतन्त्रता नहीं होती। यह सच है कि नीति मे भिन्नता है। किसी जगह एक पत्नी व्रत का पालन करना धर्म माना जाता है और किसी जगह एक समय में अनेक पत्नी करने मे कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। यह बात चाहने योग्य है कि ऐसी नीति की भिन्नता न हो, परन्तु यह भिन्नता हमारी अपूर्णता की सूचक है, नीति की अनावश्यक की सूचक कभी नहीं। ज्यों ज्यो, हमारा अनुभव बढता जायगा त्यो त्यों सब कौमो की और सभी धर्मो के लोगों की नीति मे ऐक्य होता जायगा। नीति के अधिकार को स्वीकार करने वाला जगत तो आज भी एक पत्नीव्रत को आदर की दृष्टि से देखता है। किसी भी धर्म मे अनेक पत्नी आवश्यक नहीं हैं। सिर्फ अनेक पत्नी करने की इजाज़त ही है। देश और समय को देख अमुक इजाजत दी जाय तो उससे आदर्श कुछ बिगड़ता नही है और न उसकी कोई चिन्ता ही सिद्ध होती है।

विधवा-विवाह के सम्बन्ध मे मैं अपने विचारो को अनेक बार प्रकाशित कर चुका हूँ। बाल-विधवा के पुनर्विवाह को मैं इष्ट मानता हूँ, यही नहीं, मै यह भी मानता हूँ कि उनकी शादी कर देना उनके माता-पिता का कर्त्तव्य है।

(नव जीवन)

——:०:——

दो तुलाएं

अविचारी मां बाप ने बचपन में जिन्हे व्याह दिया था, जिन्हों ने पति को कभी देखा या पहचाना न था, वे बालाएं 'विधवा' हुईं। उनके विषय मे मैंने मत दिया था कि मैं उनका विवाह हुआ ही नही मानता और विवाह हुआ या न हुआ यह विवाद दूर किनार कर, उनका विवाह कर देना मां बाप का धर्म है। मेरा यह अभिप्राय प्रकाशित देख कर एक भाई ने मुझे हिन्दी मे एक लम्बा पत्र लिखा है। उसका मतलब यह है।

'जिस कारणों से आप बाल-विधवाओ का पुनर्विवाह भला समझते हैं वे अन्य विधवाओं पर भी लागू हो सकेंगे। तो फिर क्या आप विधवा मात्र के पुनर्विवाह को उत्तेजन देंगे। मैं तो कहूँगा कि पुरुषो के पुनर्लग्न रोकना चाहिये और विधवा-विवाह की आज्ञा तो देनी ही नही चाहिये।

इस प्रकार की दलील से मनुष्य बहुत पाप करता आया है। मैं ऐसे मांसाहारियों को भी जानता हूं जो बहस करते हैं कि उत्तर ध्रुव में जहां बारहों महीने बर्फ जमी रहती है मांस खाना पड़ता है, इसलिये यहां गर्मी में भी मांस खाने में

दोष नहीं है।

जहां तहां से पाप की पुष्टि की बात हमें तुरन्त मिल जाती है। पुरुष पुनर्विवाह से रुकने वाला नहीं, मगर उसकी आड़ ले कर विधवा का हक़ देना मुल्तवी रक्खो। स्वराज्य के लिये हमें नालायक बनाने वाले कहते हैं कि 'लायक़ बनो और स्वराज्य लो।' अछूतों को दबाकर उनकी अधोगति करने वाले हम लोग है, 'अछूत अच्छे बने और भले ही हमारे साथ मिलें।'

मनुष्य अपने पास खोटे बनिये जैसा तो तराजू रखता है। एक बांट से लेता और दूसरे से देता है। अपना पर्वत जैसा दोष राई सा छोटा देखता है, और दूसरे का राई जैसा दोष पहाड़ मानता है।

जो न्याय बुद्धि से पुरुष विचार करें तो जाने कि विधवाओं को दबाने का उन्हें अधिकार नहीं है। बलात्कार से जो वैधव्य पलवाया जाता है, वह भूषण नहीं, दूषण है। यह गुप्त रोग है और प्रसंग प्रसग पर फूट निकलता है। उम्र को पहुँची हुई स्त्री विधवा हो जाने पर फिर विवाह करने की इच्छा भी न करे तो वह जगद्वंद्या है—वह धर्म का स्तम्भ है। परन्तु जिसे पुनर्विवाह की इच्छा हुई हो, और जो समाज के भय से या कानून के अंकुश से रुकती है, वह तो मन से पुनर्विवाह कर चुकी। वह वन्दना करने लायक नहीं वह दया-पात्र है और उसे फिर से विवाह करने की आज्ञा होनी चाहिये। पहले की रूढ़ि के वश होकर उच्च वर्ग में गिने जाने वाले हिन्दुओं ने इस

ऐच्छिक धर्म को नियम बना कर के धर्म मे बलात्कार को दाखिल किया है।

न्याय यों कहता है कि जहां तक विधुर पुरुष को पुनर्विवाह करने का हक है वहां तक विधवा को भी उन्ही शर्तों पर होना ही चाहिए। समाज की रक्षा के लिए अमुक प्रतिबन्ध दोनो के लिये एक समान होने चाहिए और उनमे सारे समझदार पुरुष वर्ग की भांति ही समझदार स्त्री वर्ग की भी सम्मति होनी चाहिए।

बाल-विधवा और दूसरी विधवाओ के बीच का भेद हमे भूलना न चाहिए। बाल-विधवा का फिर विवाह कर देना मां-बाप का और समाज का धर्म है। परन्तु दूसरी विधवाओ के बारे मे वह धर्म नहीं है। उनके ऊपर तो आज रूढ़ि या क़ानून का जो बलात्कार है, उसे ही दूर करने की आवश्यकता है। यानी यह कि वह विधवा दूसरा विवाह करना चाहे तो उसे इसकी आज्ञा होनी चाहिए।

बड़ी उम्र को पहुँचे हुए विधुर या विधवा के पुनर्विवाह पर तो केवल लोकमत का ही अंकुश रह सकता है। अभी तो लोकमत उलटी दिशा में बह रहा है। परन्तु जहां पर धर्म मर्यादा या संयम का पालन व्यापक हो वहां थोड़े ही स्त्री पुरुष मर्यादा का उल्लङ्घन करेंगे। अभी तो उसे जो पालें उन्हीं का धर्म है। साठ वर्ष का धनिक बुड्ढा दस-बारह साल की लड़की से तीसरा विवाह करते शर्माता नहीं और समाज उसे सिर पर धरता है। और जब बीस वर्ष की विधवा सयम का पालन करने को

कोशिश करती हुई भी नहीं कर सकती, और इसलिए फिर विवाह करना चाहती है तो समाज़ उसका तिरस्कार करता है। यह धर्म नहीं किन्तु अधर्म है।

इस बलात्कार को, इस अधर्म को दूर करने के सामने, दूसरे देशो की अनीति इत्यादि का हिसाब करना निरर्थक और बेमौके है। बाल-विधवा से लेकर बूढ़ी विधवा तक सभी सती सीता जैसी पवित्र होवें तो भी मै कहता हूं कि अगर वे फिर से विवाह करना चाहे, तो उन्हें रोकने का किसी को अधिकार नहीं है। उन्हें प्रेमपूर्वक समझाना समाज का काम है, उन्हें दबाने का समाज को अधिकार नहीं है।

अपने लिए हम जिस गज का इस्तेमाल करते हैं, दूसरों के लिए भी उसी को काम में लेवें, तो दुनिया के तीनों ताप दूर हों, और फिर एक वार धर्म संस्थापन हो।

स्त्रियों का आदर करो

पजाब का गुरगाँव अपेक्षा कृत एक छोटा सा जिला है। मालूम होता है कि उसके भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर मि० ब्रेन को ग्राम सुधार की तीव्र लग्न थी। उनके उत्साह और इस सम्बन्ध मे उनकी प्रामाणिकता के बारे में मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है। हां, मै जरूर यह मानने लगा हूँ कि सत्ता के कारण उनके काम मे रुकावट पैदा हुई। मालूम होता है कि असहयोग आन्दोलन का उन पर खूब असर पड़ा था, शायद इस विचार से डरे होगे कि अगर सरकार किसी तरह गांव वालो की सेवा नहीं करेगी तो असहयोगियों का बल बढ़ेगा और आश्चर्य नहीं कि इस विचार की प्रेरणा से इस दशा में कुछ करने का उन्होने निश्चय किया हो। लेकिन मि० ब्रेन के काम मे दम्भ या दिखावट नही थी। वह मानते थे कि अपनी सत्ता से पूरा-पूरा लाभ उठाकर भी अगर लोगो मे सुधार कराया जा सके, तो अवश्य करना चाहिए। मि० ब्रेन की जी-तोड़ मेहनत और धन की खासी सुविधा के रहते हुए भी उनका प्रयोग असफल हुआ माना जाता है। मि० ब्रेन ने अपने प्रयोगो

का ढिंढोरा पीटने में कोई बात उठा न रक्खी थी। इस सम्बन्ध में अखबारों में बड़े-बड़े लेख देख कर मेरा ध्यान उधर गया; और यह सोच कर कि अगर उनका प्रयोग सिद्ध हुआ हो तो उससे मुझ जैसे को बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है, मैंने लाला जी की 'लोक-सेवक-समिति' द्वारा वस्तु स्थिति की जांच करवाई। फल स्वरूप समिति के सदस्य लाला देशराज ने खूब लगन के साथ जांच की और उसके बारे में अपनी रिपोर्ट मुझे लिख भेजी। यह रिपोर्ट 'यंग इंडिया' मे छप चुकी है, 'हिन्दी नवजीवन' में उसका अनुवाद देने की आवश्कता मालूम नहीं होती। 'हि० न०' के पाठकों के लिए यह जान लेना काफी होगा कि लाला देशराज की रिपोर्ट लिखी गई थी, उनके लिए दलीलें भी आवश्यक थीं। हिंदी नवजीवन के पाठकों के लिए वे आवश्यक नहीं हैं। लेकिन ऊपर कहे गये कारणों की वजह से मि० ब्रेन का प्रयोग यद्यपि असफल हुआ है, तो भी उनके विचारों और सूचित उपायों से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। इसलिए उनकी किताब के कुछ अवतरण मैं इस लेख माला मे देना चाहता हूँ। मि० ब्रेन हमारे गांवों में नीचे लिखे दोष बताते है:—

१—किसान की खेती करने की रीति खराब है।

२—वह अपने गांव में गन्दगी खराबी और रोग इकट्ठा करता रहता है।

३—छूत वाले रोगों का शिकार बन जाता है।

४—वह अपना धन फ़िज़ूल ख़र्ची से उठा देता है।

५—वह अपनी स्त्री को गुलाम बनाये रखता है, उसकी संभाल नहीं रखता।

६—वह अपने घर या गांव की जरा भी चिन्ता नहीं रखता, अपने या अपने पास के वायुमण्डल को सुधारने मे न तो कुछ समय खर्च करता है, न कभी सुधार की बातों का विचार ही करता है।

७—वह सब तरह के परिवर्तनों और हेर फेर का विरोध करता है। वह जरा भी नहीं जानता कि दुनियां के और-और गांव वालों ने अपने गांव का किस तरह सुधार किया है।

इन दोषो में से कुछ के सम्बन्ध मे तो मि० ब्रेन की राय मुझे गलत मालूम होती है, और कुछ बातो को वह बढ़ा कर कह गये हैं। लेकिन कुल मिला कर उनकी राय हमारे लिए विचारणीय है, और उनकी सूचनाओ मे से हम बहुत कुछ सीख सकते है। आज तो मै स्त्रियो के बारे मे उनके विचारो का संक्षेप मे यहां देना चाहता हूं। क्योंकि उनकी इन बातो का मुझ पर ज्यादा असर हुआ है, और उनमें बहुत-कुछ सार है। वे कहते हैं:—

"आप की स्त्रियां जब बच्चा जनने को होती है, तब आप उनके लिए अंधेरी और गन्दी कोठरी चुनते हैं; ऐसी स्त्री को दाई का काम करने को बुलाते है, जिसे न तो आरोग्य के नियमो का ज्ञान होता है और न सुघड़ ज्ञानवान ही होती है। लेकिन आप का धर्म तो यह है कि आप उसकी पूरी-पूरी ख़बर रक्खें,

अच्छे से अच्छा प्रबन्ध करें। अगर स्त्रियों के लिए आप के दिल में इज्जत होती तो आप असंख्य स्त्रियों को उम्दा दाई बनाते और दाई इज्जतदार स्त्रियों में गिनी जातीं। इसके विपरीत आप जिन्हें नीच मानते है, उन्ही जातियों में से चाहे जिस स्त्री को यह अतिशय नाजुक और जोखिम-भरा काम सौंपते हैं। बच्चा पैदा होने के समय अच्छी रोशनी वाला कमरा चाहिए, आप के यहाँ उनमें के एक भी बात नहीं पाई जाती। आप अपनी लड़कियो को तालीम नहीं देते, देते भी हो तो न कुछ सी। अकेला मनुष्य ही एक प्राणी है, जो अपने लड़के और लड़की के बीच भेद रखता है और लड़की को हलकी मानता है। लेकिन याद रहे कि एक समय था, जब कि आप की माता लड़की थी, आप की पत्नी भी छोकरी थी और आप की छोकरी भविष्य की माता है। अगर स्त्रियां ईश्वर की क्षुद्र-हलके दर्जे की रचनाओं मे से हैं, तो आप जो उनके गर्भ से पैदा हुए हैं अवश्य ही क्षुद्र हैं।"

एक दूसरे स्थान पर मि० ब्रेन लिखते हैं:—

"आप अपनी पुरानी सभ्यता का अभिमान रखते हैं, और यह देख कर दुःखी होते है कि दुनियां आप की क़द्र नहीं करती। लेकिन जब तक आप के दिल मे स्त्रियो के लिए इज़्जत नहीं है। तब तक आप की इज्जत कौन करेगा? आप उन्हे अपने घरों मे बन्द रखते हैं और फिर भी उनके लिए अच्छे से पाखाने नहीं बनवाते। यानी अगर उन्हें टट्टी

जाना हो तो बेचारियां जा नहीं सकतीं, अँधेरा पड़ने पर वहीं लुक-छिप कर बैठ जाती हैं। इस तरह डर ही डर मे उनकी ज़िन्दगी बीत जाती है। अपनी लड़कियों को आप बचपन मे ही जहां तहां व्याह देते हैं। ऐसा करते समय उनके स्वार्थ का तनिक भी विचार नहीं करते। आप न उन्हे घर-गिरस्ती सँभालना सिखाते है, न प्रसूति के नियम बताते हैं, न यह समझाते है कि वह बच्चे को कैसे रखे, किस तरह बच्चे को पाले-पोसे। इन सब कारणों से आप की लड़कियो का न तो बदन बनता है, न उनकी बुद्धि का ही विकास होता है। अक्सर देखा जाता है कि आप स्त्रियो से कस कर मेहनत करवाते है, लेकिन खुद बैठे बैठे हुक्का गुड़गुड़ाया करते या बाते छाटते रहते हैं। अगर आप की स्त्री के बार बार लड़की ही पैदा होनी है, तो आप उसे उलाहना देते है। उसके साथ कड़ा बर्ताव करते है और अक्सर उसे छोड़ कर नई बीबी ब्याह लाते हैं।"

इस चित्र मे मुझे बहुत कुछ सच्चाई दीख पड़ती है। स्त्रियां स्वयं तो अपनी हालत पहचानती नहीं। रूढ़ि के वश होकर हम इनमे की कई बातो को निबाहे जाते है। वैसे थोड़े बहुत अशो मे, स्त्रियो के लिए हमारे दिल मे इज़्ज़त भी होती है। उस कारण संसार का काम चलता रहता है। लेकिन हम इससे इन्कार नहीं कर सकते कि हमारा आधा अंग अगर बुरा नहीं तो अधूरा ज़रूर है। इस दर्दनाक हालत को मिटाने के लिए मि० ब्रेन ने एक तरीका तो यह बताया है कि वालिका कन्याओं

के लिए जुदा मदर्से ही न खोले जायँ ; लड़के और लड़कियां एक ही साथ पढ़े, और दोनो की एक सी इज़्ज़त की जाय। गुरगांव मे अपनी हुकूमत से भरसक लाभ उठाकर मि० ब्रेन ने सयुक्त शालाएँ चलाई भी थीं, लेकिन लोग तैयार न थे इसलिए उनका यह प्रयोग भी लगभग बेकाम हुआ है। मुझे इसमे ज़रा भी शंका नहीं है कि बिलकुल शुरूआत की तालीम लड़को और लड़कियों की एक ही साथ दी जानी चाहिए। भाई बहन अगर एक साथ न पढ़े तो क्या करें और क्यो न पढ़ें ? साथ पढ़ने से वे एक दूसरे की इज़्ज़त करना सीखते हैं। नन्हें बालक विकार वश होंगे इस विचार से डरना ग़ैर ज़रूरी है। शिक्षक सच्चरित्र हो तो आसपास का वातावरण शुद्ध कर सकता है, शुद्ध रख सकता है। कई बुराइयां हममे घुसी बैठी है, इससे शुरुआत मे कठिनाई तो अवश्य होगी, लेकिन कठिनाई किस सुधार मे नहीं होती ? मनुष्य का पुरुषार्थ तो कठिनाइयों के पहाड़ को काट गिराने मे या उसे लांघ जाने में ही है।

(नवजीवन)
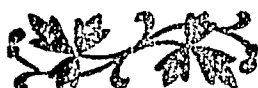
धर्म संकट

तीस वर्ष के एक ब्राह्मण नवयुवक लिखते हैं:—

"मैं तीस वर्ष का हूँ। मेरे विवाह को पांच वर्ष हो चुके हैं। मेरी पत्नी की उम्र लगभग बीस वर्ष की है मुझे अब तक कोई सन्तान नही है। लगभग पांच साल से मैं आप से सलाह पूछने का विचार कर रहा हूँ लेकिन अपनी मानसिक कमजोरी के कारण मै आप को कुछ भी लिखने की हिम्मत न कर सका। मै खानगी नौकरी कर जैसे-तैसे अपना तथा अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करता हूँ।

बारह तेरह वर्ष की उम्र से ही मै कुटेव के फन्दे मे फँस गया था। आज भी इस बुरी लत के कारण परेशान हूँ इस बुरी आदत के कारण मै अपनी शारीरिक एव मानसिक शक्तियां खो बैठा हूँ। मुझमे किसी भी काम के लिए न उत्साह रह गया है, न हौसला। जवानी में बुढ़पा आ गया है। अपनी पत्नी की विषय वासना तृप्त करने तथा सन्तान पैदा करने की शक्ति मुझमे नही रह गई है। मेरी पत्नी एक दो बच्चो के लिए बहुत उत्सुक है। मैं किसी तरह उसको संतुष्ट नहीं कर सकता।

दूसरे ब्राह्मण जाति में पति के जीवित रहते भी स्त्री किसी पुरुष के साथ पुनर्विवाह नहीं कर सकती। मैं अपनी पत्नी को पुनर्विवाह की स्वतंत्रता देने को तैयार हूँ, किन्तु जाति के बन्धनों के कारण इस तरह की उदारता भी व्यर्थ है।

कृपा करके मुझे और मेरी पत्नी को उचित सलाह देने वाला कोई लेख (नवजीवन) में लिख कर अनुगृहीत कीजियेगा। कई वार मैं इस जीवन से ऊब कर आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूँ। इसका मूल कारण मेरे इस बुरी लत से उत्पन्न हुई कमजोरी है! कृपया मेरा नाम (नवजीवन) में न छापियेगा घर के पते से अगर पत्र भेजेंगे तो मुझे नहीं मिलेगा, इसी कारण (नवजीवन) द्वारा उत्तर की आतुरता-पूर्वक प्रतीक्षा करता रहूँगा।"

इस पत्र को छापते हुये सकोच तो हुआ लेकिन, आखिर यही ठहरा कि छापना ही चाहिये। ऐसे दो चार पत्र भिन्न-भिन्न स्थानो से आये है। कई युवक मुझसे मिल कर बातें भी कर गये हैं। इस पर से मैं मानता हूं कि ऐसी कथाए असाधारण नहीं है, और इसी कारण संभव है कि यहां इस पर कुछ विचार करने से किसी न किसी को कुछ लाभ पहुँचे।

अगर इस दुःखी ब्राह्मण ने शुद्ध सत्य लिखा है, तो कहना पड़ेगा कि उन्होंने जान बूझ कर एक गरीब बाला को कुएं मे ढकेला है। पचीस वर्ष की उम्र मे उन्होंने विवाह किया था। उस उम्र मे तो अपनी अवस्था को खूब जानते थे। उनकी

कमजोरी आज कल की—ताजी नहीं है। विवाह के दिनों में भी वह मौजूद थी। अतएव मिथ्या शर्म के वश होने के बदले उनका कर्त्तव्य तो यह था कि वह माता पिता को अपनी स्थिति से परिचित कर देते और व्याह करने से मुकुर जाते।

मगर होना था सो हो गया। अब इसका कोई उपयुक्त इलाज हो सके तो करना चाहिये। बीती बात को लेकर विचार करने बैठना व्यर्थ है। मेरे विचार में हिन्दू कानून भी ऐसे सम्बन्ध को विवाह नहीं कहेगा। पुरुष की पोशाक पहन कर अगर कोई स्त्री दूसरी स्त्री के साथ व्याह करे तो वह व्याह नहीं है, और वह स्त्री दूसरा विवाह करने को स्वतंत्र है। इसी तरह अगर कोई पुरुष—किसी भी कारण वश क्यों न हो—विवाह के अवसर पर ही पुरुषत्व-हीन हो तो वह विवाह नहीं माना जा सकता। अतएव प्रस्तुत बाला यह समझ कर कि उसका विवाह हुआ ही नहीं है, अपना व्याह कर सकती है। युवक को जाति के सामने सचाई के साथ अपनी भूल कबूल करके, प्रयत्न-पूर्वक अपनी कथित पत्नी का व्याह करा देना चाहिये। इसमें बड़े-बूढ़े दस्तन्दाजी करें तो उनके विरोध का सामना करके भी युवक को अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुये प्रस्तुत बाला का उद्धार करना चाहिये।

हमारे नौजवान नपुंसकता आदि रोगों को छिपाते हैं लेकिन उन्हें छिपाना गैर जरूरी है! बचपन में बालक जिन बुरी लतों के शिकार हो जाते है, उनके लिये वे जिम्मेदार नहीं है, उनके

माता पिता जिम्मेदार हैं। मां बाप लापरवाह रहते हैं, बालकों को झूठी शर्म सिखाते हैं, उन्हे अपना मित्र बनाकर नहीं रखते ऐसी हालत में अनुभव-हीन होने की वजह से अगर बालक कुमार्ग में पैर रखे तो इससे बालकों का नहीं, बल्कि बड़े बूढ़ों का ही कसूर है।

अतएव बालिग होते ही बालकों को साहस-पूर्वक नपुंसकता आदि दोषों को अपने बड़े-बूढ़े पर प्रकट कर देना चाहिये। समय रहते इलाज करने से ऐसे रोग या दोष मिट भी सकते है। लेकिन इन पतिराज को पुरुषत्व प्राप्त करने की कोशिश में लगाकर उक्त बाला को त्रास देते रहने की सलाह मैं नहीं दे सकता। उक्त बहन का ठीक-सा प्रबन्ध कर देने के बाद अगर वह चाहे तो भले अपनी तबीयत का इलाज करे। इलाज कराने मे भी सावधानी की जरूरत है। मात्राये, रसायन, तेजाब और याकूती आदि खाकर कोई सच्चा पुरुषत्व नहीं पा सकता। जो कुछ मिलता है, सो तो एक प्रकार की झूठी-शारीरिक उत्तेजना-मात्र होती है। याकूती द्वारा कोई अपने कमजोर मन को सबल नहीं बना सकता है। जो पुरुषत्व खो चुके है, उनके लिये सच्चा उपाय तो यह है कि व्यायाम करे, सात्विक भोजन करे, खुली हवा मे रहें और जल चिकित्सा करे और सब से पहला पुरुषार्थ तो बुरी लत को नाश कर देने मे है। जल-चिकित्सा से ज्ञान-तन्तु सबल होते तथा मन को शान्ति मिलती है। इसी कारण कुटेव भी शिथिल हो जाती है।

संभव है कि इन युवक की पत्नी पुनः विवाह करने को तैयार न हो, अगर यह वस्तु स्थिति हो तो उन्हे किसी संस्था मे रह कर सेवा धर्म स्वीकार कर तत्सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। अगर वह दिन भर सेवा और अभ्यास मे लगी रहे तो उनकी सन्तान-लालसा तथा विषयेच्छा का दमन हो सकता है। वह दुनिया के इतने सारे बालको को अपनी सन्तान क्यो न माने।

लेकिन शुरुआत तो युवक को करनी चाहिए, इस तरह कि वह अपनी कमजोरी दृढ़तापूर्वक औरो पर प्रकट कर दे। डाक द्वारा पत्र पाने से डरना तो पामरता की पराकाष्ठा है। लेकिन आजकल हमारे देश का वातावरण इतना निःसत्व बन गया है कि बहुतेरे ऐसे नवयुवक भी हैं जो डाक द्वारा पत्र मगाने से डरते है। इस बारे मे बड़े बूढ़े कसूरवार तो हैं ही अपनी सन्तान के पत्र पढ़ने की धृष्टता करने से वे भी नही झिझकते। बड़े या बालिग लड़के माता पिता को अपनी तमाम बाते कहने या अपने पत्र बताने के लिए जरा भी बंधे हुए नही है जो माता पिता बिना आज्ञा के उनके पत्र पढ़ने की इच्छा रखते हैं, वे गुरुजन नही बल्कि जालिम हैं।

(नव जीवन)